सत्साहित्य प्रकाशन

अतलांतिक के उस पार

अमरीकी जीवन के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन

रामकृष्ण बजाज

भूमिका
मोहम्मद करीम छागला

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
१९६१

प्रकाशक	मार्तण्ड उपाध्याय मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली
संस्करण	पहला : १९६१
मूल्य	अढ़ाई रुपये
मुद्रक	हीरा आर्ट प्रेस दिल्ली

प्रकाशकीय

बड़े हर्ष की बात है कि हिन्दी में यात्रा-साहित्य के लिए पाठकों की रुचि बराबर बढ़ रही है और ऐसी पुस्तकों की मांग हो रही है, जो घरबैठे यात्रा का आनन्द दे सकें, साथ ही ज्ञान में वृद्धि भी कर सकें।

हिन्दी में ऐसे साहित्य की कमी को देखकर हमने यात्रा-साहित्य का प्रकाशन आरम्भ किया है और इस माला में कई पुस्तकें निकाली हैं। इन सब पुस्तकों की विशेषता यह है कि इन्हें उन व्यक्तियों ने लिखा है, जिन्होंने स्वयं यात्रा की थी। परिणामतः सभी पुस्तकें बड़ी रोचक बन पड़ी हैं। उनके पढ़ने से पाठकों को एक ओर आनन्द मिलता है तो दूसरी ओर उनकी जानकारी भी बढ़ती है। 'हिमालय की गोद में' पाठकों को गंगोत्री-यमुनोत्री की यात्रा कराती है तो 'उत्तराखण्ड के पथ पर' बदरी-केदार की; 'लद्दाख यात्रा की डायरी' पाठकों को लद्दाख के सुरम्य क्षेत्र में ले जाती है, तो 'जय अमरनाथ' काश्मीर तथा वहां के सुविख्यात तीर्थ अमरनाथ में। इसी प्रकार 'दुनिया की सैर : अस्सी दिन में' दुनिया के कई देशों की यात्रा करा देती है, तो 'जापान की सैर' सूर्योदय के देश में घुमा देती है; 'रूस में छियालीस दिन' विश्व के दो अत्यन्त शक्तिशाली राष्ट्रों में से एक का प्रवास कराती है, तो 'आज का इंग्लिस्तान' आधुनिक इंग्लैंड की झांकी प्रस्तुत करती है और 'यूरोप-यात्रा : एक प्राकृतिक चिकित्सक की' कई देशों में पर्यटन की प्रेरणा देती है।

'अतलांतिक के उस पार' इसी माला की एक मूल्यवान कड़ी है। इसके लेखक ने पिछले दिनों अमरीका की यात्रा की थी और वहां के

जीवन के विभिन्न पहलुओं को बड़ी अच्छी तरह से देखा था। अपने इसी अनुभव का लाभ उन्होंने इस पुस्तक में पाठकों को दिया है। पुस्तक की सबसे बड़ी खूबी यह है कि यह केवल मनोरंजन ही नहीं करती, बल्कि एक शक्तिशाली राष्ट्र को देखने और समझने में भी सहायक है।

हम आशा करते हैं कि यह तथा इस माला की सभी पुस्तकें पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनसे लाभान्वित होंगे।

—मंत्री

भूमिका

श्री रामकृष्ण बजाज एक ऐसे उत्साही और देशसेवी भारतीय युवक हैं, जो युवक-आंदोलन के महत्व से भली-भांति परिचित हैं। सारी दुनिया के युवकों के बीच इस प्रकार का पारस्परिक सद्भाव होना चाहिए कि वह राजनैतिक नेतृत्व पर प्रतिबिंबित हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे उन तनावों और संघर्षों को दूर करने में निश्चित रूप से सहायता मिलेगी, जो दुर्भाग्य से आज प्रायः सारी दुनिया में विद्यमान हैं। कई देशों में नौजवानों ने क्रांतिकारी आंदोलनों और स्वाधीनता-संग्रामों में महत्वपूर्ण भाग लिया है। आज, जबकि स्वतंत्रता की समस्या लगभग पूरीतरह हल हो गई है, संसार को एक दूसरी समस्या का सामना करना पड़ रहा है; वह समस्या है स्वतन्त्रता की अखंडता और स्वतंत्र देशों के बीच शांतिपूर्ण सहअस्तित्व बनाये रखने की। शान्तिपूर्ण सहअस्तित्व तभी स्थापित हो सकता है जबकि विभिन्न देशों की संस्कृतियों और सामाजिक प्रथाओं के प्रति सद्भाव और आदर हो। इसके लिए सहनशीलता के महान गुण की भी आवश्यकता है और यह गुण तभी आ सकता है जब अपनी शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा हम अपने नवयुवकों में वास्तविक ऐतिहासिक भावना और दृष्टिकोण पैदा करें और उन्हें प्रांतीयता तथा उग्र राष्ट्रीयता जैसे संकीर्ण विचारों का मुकाबला करने के लिए तैयार करें। इसलिए विभिन्न देशों के युवकों का मिलन और उनके बीच प्रेमल संबंधों का होना एक अंतर्राष्ट्रीय महत्व का कार्य है।

श्री बजाज भारतीय युवकों का एक शिष्टमंडल लेकर अमरीका गये थे। मैं उस समय वहां का राजदूत था। यह शिष्टमंडल जहां-जहां गया, वहां-वहां इसने बहुत अच्छा असर डाला। लोगों की भी इसके बारे में अच्छी राय बनी। श्री बजाज ने कई अमरीकी संस्थाओं को बारीकी से देखा और उन्हें अच्छी तरह से समझा। प्रस्तुत पुस्तक उसीका परिणाम है।

अमरीका में इस समय कोई चार-पांच हजार भारतीय विद्यार्थी हैं। अध्ययन के क्षेत्र में इनमें से अधिकतर विद्यार्थियों ने असामान्य योग्यता का परिचय दिया है और इस तरह अपने देश के अनौपचारिक राजदूतों के रूप में इन्होंने सराहनीय कार्य किया है। फिर भी, जब मैं वहां था, मैंने यह अनुभव किया कि अमरीका जाने से पहले प्रत्येक युवक को वहां के बारे में उचित जानकारी दी जानी चाहिए। अमरीका जाने का अर्थ है एक बिल्कुल दूसरी दुनिया में जाना। वहां के रीति-रिवाज, आश्चर्यजनक समृद्धि, जीवन-स्तर आदि हमारे यहां की स्थिति से इतने भिन्न हैं कि पहली बार उस देश में जानेवाले व्यक्ति के लिए अमरीकी विधि-विधानों और रीति-रिवाजों की कुछ पूर्व-जानकारी होना नितांत आवश्यक है। यह पुस्तक इस दिशा में सुंदर दिग्दर्शन करायेगी। मैं इस पुस्तक को लिखने के लिए श्री बजाज को बधाई देता हूं और इसकी सफलता की कामना करता हूं।

—मोहम्मद करीम छागला

दो शब्द

अगस्त १९५७ में 'वर्ल्ड असेंबली ऑफ यूथ' की अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस दिल्ली में हुई थी। उस समय करीब ८० देशों से ४०० प्रतिनिधि भारत आये थे। उनमें अमरीका के 'यंग अडल्ट कौंसिल' के सदस्य भी थे। अमरीका की करीब २६ प्रमुख युवक-संस्थाएं इस कौंसिल की सदस्य हैं। विदेशों में अमरीका के युवकों का प्रतिनिधित्व यही संस्था करती है। उन्हींके निमंत्रण पर १९५९ के फरवरी मास में हम लोग करीब दो महीने के भ्रमण के लिए अमरीका पहुंचे। भारतीय 'वर्ल्ड असेंबली ऑफ यूथ' की कमेटी के सदर के नाते मुझे इस युवक प्रतिनिधि मंडल का मुखिया बनने का अवसर मिला।

प्रवास से लौटने के बाद कुछ लेख लिखे, जो 'धर्मयुग' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में प्रकाशित हुए। मित्रों ने इच्छा प्रकट की कि इन लेखों के साथ कुछ सामग्री और जोड़कर एक किताब के रूप में प्रकाशित करना उचित होगा। मैं स्वयं अनुभव करता रहा हूं कि हमारे देश के युवक-आंदोलन को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक है कि इस सिलसिले में हमारे देश में अधिक साहित्य का निर्माण हो। जिन लोगों को विदेशों में जाकर भारत का प्रतिनिधित्व करने का मौका मिलता है, उन्हें चाहिए कि वहां के जीवन तथा प्रमुख विचार-धाराओं के बारे में ठीक से अध्ययन कर भारतीय साथियों के सामने अपना अनुभव रखें। यह बात युवकों के प्रतिनिधियों पर तो विशेष तौर पर लागू होती है।

'अतलांतिक के उस पार' के प्रकाशन के पीछे यही प्रेरणा है। इसमें

मैंने अमरीकी जीवन के विभिन्न पहलुओं का विवेचन किया है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर पाठकों को अमरीका को जानने में मदद मिलेगी। प्रकाशित सामग्री में मैंने बहुत परिवर्त्तन किया है और कुछ नये अध्याय भी जोड़े हैं।

जब हम लोग अमरीका में थे, उस समय वहां रिपब्लिकन सरकार थी। अब डेमोक्रेट सरकार आ गई है। श्री आइजनहोवर के बाद अब श्री केनेडी राष्ट्रपति हो गये हैं। पार्टी के बदलने के साथ-साथ एक नौजवान पहली बार इतनी छोटी उम्र में अमरीका का राष्ट्रपति बना है। सही माने में नई पीढ़ी ने शासन की बागडोर अपने हाथों में ली है हम लोग अमरीका में थे तभी से वहां की राजनैतिक आबोहवा में धीरे-धीरे परिवर्तन होता हुआ दिखाई दे रहा था। उनकी विदेश-नीति अधिक यथार्थवादी हो रही है। भारत के प्रति उनका आकर्षण और सहानुभूति बराबर बढ़ रही है। श्री केनेडी से भी हमें मिलने का मौका मिला था। यद्यपि मुलाकात बहुत थोड़े समय के लिए हुई, लेकिन उनके व्यक्तित्व से हम बहुत प्रभावित हुए। मैं मानता हूं कि उनके जमाने में भारत और अमरीका का सम्बन्ध और सुदृढ़ होगा।

अपनी पत्नी, विमला बजाज, के प्रति तो क्या कृतज्ञता प्रदर्शित करूं? वह भी हमारे साथ अमरीका गई थीं। प्रतिनिधि-मंडल की सदस्या न होते हुए भी, उन्होंने पूरी यात्रा के दौरान, अपनी सूझ-बूझ तथा विनोदप्रियता से सदस्यों के बीच आत्मीयता का वातावरण बनाये रखा। इससे मुझे बहुत मदद रही। इसके अलावा, इस पुस्तक के 'डिसनीलैंड' 'हॉलीवुड' और 'नियाग्रा प्रपात व वापसी' नामक अध्यायों के लेखन में भी उनकी सहायता मिली।

अत्यन्त व्यस्त होते हुए भी श्री छागला ने पुस्तक की भूमिका लिख दी, इसके लिए मैं उनका आभारी हूं।

—रामकृष्ण बजाज

विषय-सूची

अतलांतिक
के
उस पार

: १ :

न्यूयार्क में

भारी-भरकम जहाज 'क्वीन ऐलीजाबेथ' हम लोगों को लिये अमरीका के पूर्वी किनारे पर स्थित न्यूयार्क पहुंचना ही चाहता था। एक ओर न्यूयार्क के सबसे घने बसे हुए भाग मैनहट्टन के गगन-चुंबी भवन दिखाई दे रहे थे, दूसरी ओर 'स्टैच्यू आफ़ लिबर्टी' (स्वतंत्रता की मूर्ति) थी। इसके बारे में इतना सुना था, फिर भी उसके सामने से गुजरने पर कई तरह की भावनाएं अपने-आप पैदा होती रहीं। भारतीय स्वतंत्रता के आंदोलन के दिन याद आने लगे। जिस तरह अमरीका ने अंग्रेजों के विरुद्ध लड़कर आजादी पाई, उसी तरह भारत ने भी, उसके अनेक वर्षों बाद, अपने देश के लिए स्वतंत्रता प्राप्त की। यद्यपि दोनों देश इतनी दूरी पर स्थित हैं, लोगों के संस्कार, विचार और सोचने के तरीकों में इतना अंतर है, फिर भी आजादी की पुकार किस तरह सारी दुनिया में एक-सी होती है, इसका दिग्दर्शन स्वतंत्रता की इस महाकाय मूर्ति को देखकर स्वाभाविक रूप में होजाता है।

हमारा जहाज बंदरगाह पर पहुंचा, तो मानों हमारे स्वागत के लिए बहुत जोरों से बर्फ गिर रही थी। वातावरण की उदासीनता व ठंडक, हमारे पूर्वपरिचित दोस्त अर्विन कर्न (यंग अडल्ट कौंसिल के अध्यक्ष) की हर्षभरी मुस्कान और भावपूर्ण स्वागत से दूर हो गई। 'यंग अडल्ट कौंसिल' (याक) के आमंत्रण पर हम लोग भारत के नौजवानों की तरफ से एक युवक-प्रतिनिधि-मंडल लेकर अमरीका पहुंचे थे। श्री कर्न १९५८ के अगस्त मास में दिल्ली में अपने अन्य साथियों के

साथ, अमरीका के युवक-प्रतिनिधि-मंडल के अध्यक्ष की हैसियत से विश्व-युवक-संघ (वर्ल्ड असेंबली ऑफ़ यूथ, या 'वे') के तृतीय अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में भाग लेने आये थे। उसी समय हम लोगों से उनका अच्छा गाढ़ा मित्र-भाव स्थापित हो गया था। देश-विदेश के नवयुवक जब इस तरह के सम्मेलनों में इकट्ठे होते हैं तो स्वाभाविक ही उनमें आपस में बिना किसी रंग और जाति-भेद के बहुत जल्दी ही दोस्ती हो जाती है, क्योंकि उनकी भावना के पीछे कोई बंधन नहीं रहता और न राजनीति की खाई ही उनको एक-दूसरे से अलग करती है। अपने-अपने देश के निर्माण के लिए उत्साह से काम करनेवाले अस्सी देशों के करीब चारसौ प्रतिनिधि नवयुवक भाई-बहन ऐसे ही सम्मेलन के लिए दिल्ली में इकट्ठे हुए थे। इस सम्मेलन का उदघाटन हमारे परम-प्रिय और चिरयुवक श्री जवाहरलाल नेहरू ने किया था। इतने बड़े और अंतर्राष्ट्रीय युवक-सम्मेलन का भारत में आयोजित होने का यह पहला ही अवसर था। बहुत बड़ी संख्या में विदेशी अतिथि गैरसरकारी तौर पर आमंत्रित किये गए थे और नवयुवकों ने अपने ही बूते पर इसकी सारी जिम्मेदारी उठाई थी। सम्मेलन को पूरी सफलता से संपन्न करके उन्होंने सिद्ध कर दिया कि युवकों को जिम्मेदारी सौंपी जाय तो उसे वे अच्छी तरह से और सफलतापूर्वक निभा सकते हैं।

इसी अवसर पर, और शायद इसी वजह से, अमरीकी प्रतिनिधि-मंडल ने यह इच्छा प्रकट की कि हम लोग उनके देश में भी जायं और वहां के युवक-आंदोलन को समीप से देखें और समझें। उनके अनुभव से हम लाभ उठावें और अपने युवकों के बारे में भी वहां के नौजवानों को सारी बातें बतावें।

विश्व-युवक-संघ (वे) की भारतीय कार्य-समिति ने निर्णय किया कि १९५९ के आरंभ में एक ऐसा युवक-मंडल अमरीका-प्रवास के लिए भेजा जाय, जिसे अधिक-से-अधिक नुमाइंदगी प्राप्त हो। इस आधार पर समिति ने निम्न प्रतिनिधियों को मंडल के सदस्यों के रूप में चुना :

१. श्री रामलाल पारिख (युवक कांग्रेस)

२. डॉ० जी. जी. पारिख (समाजवादी युवक सभा—प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का युवक-विभाग)
३. श्री आर. नरसिमैया (यंग फार्मर्स एसोसियेशन)
४. श्री पी. टी. कुरियाकोज (ऑल इंडिया कैथलिक युनिवर्सिटी फेडरेशन)
५. कुमारी मालती वैद्यनाथन (बंबई विश्वविद्यालय की एक छात्रा, भारतीय नृत्यकला में निपुण)

श्री वीरेन जे० शाह, भारतीय विश्वयुवक-संघ के कोषाध्यक्ष, जो उस समय अमरीका में ही थे, को भी सदस्य के रूप में शामिल कर लिया गया। चूंकि इन पंक्तियों का लेखक भारतीय समिति का अध्यक्ष था, अतः उसे इस प्रतिनिधि-मंडल का नेता बनाया गया और इस प्रकार प्रतिनिधि-मंडल की सदस्य-संख्या, अंततः, सात हो गई।

हम लोग न्यूयार्क शहर में पहुंचे। वहां का जीवन बड़ा ही व्यस्त है। सभी लोग बराबर भाग-दौड़ में रहते हैं। सारा काम बड़ी रफ्तार और फुर्ती से चलता है। लोगों की चाल भी तेज होती है। किसी व्यस्त सड़क पर जब हम पहुंचते तो उसी तेज़ रफ्तार से हमें भी चलना पड़ता। इतनी तेज़ चलने की आदत न होने से यह हमारे लिए थका देनेवाली बात होती थी।

हां, एक चीज हमें बहुत पसन्द आई। वह थी वहां की सड़कों का विभाजन। सारी न्यूयार्क नगरी छः-सात बहुत बड़े रास्तों में विभाजित है। उनको एवेन्यू कहते हैं और सबको अलग-अलग नाम दिये गए हैं। उनको जितनी भी छोटी-बड़ी सड़कें काटती हैं, उन सबको क्रमशः नंबर दिये गए हैं—करीब १ से १५० तक। इसलिए किसी भी नये व्यक्ति को यदि शहर में कोई जगह ढूंढ़नी हो तो ज़रा भी दिक्कत नहीं होती। सड़क का नंबर बताते ही पता चल जाता है कि हमें किधर जाना होगा। घरों के नंबर भी कुछ संख्या तक तो, मध्य की बड़ी सड़क की एक तरफ होते हैं और बाकी के दूसरी तरफ। यह व्यवस्था समय बचाने के लिए बहुत ही उपयुक्त और सुविधाजनक लगी।

न्यूयार्क में एक बड़ी समस्या हमें दिखाई दी। वह थी लोगों के

गाड़ी खड़ी करने की। आमतौर पर जिनके पास अपनी गाड़ी होती है, वे भी शहर के बाहर काफी दूर जाना होता हो तब, या फिर छुट्टियों के दिनों में ही उसे निकालते हैं। रोजमर्रा के जीवन में तो वे जमीन के भीतर चलनेवाली रेल गाड़ी या बस के द्वारा ही घूमना पसंद करते हैं। यह तरीका बहुत सुविधाजनक, समय बचानेवाला और सस्ता भी रहता है। गाड़ी पार्क करने के लिए जगह मुश्किल से मिलती है। मिल भी जाती है तो बहुत महंगी पड़ती है। मुख्य सड़कों पर तो गाड़ी खड़ी कर ही नहीं सकते। आस-पास की गलियों में जाना पड़ता है। वहां भी बहुत-सी सड़कों पर मीटर लगे हुए होते हैं। कई जगह आप आधे घंटे से ज्यादा गाड़ी नहीं रोक सकते और कई जगह एक घंटे से ज्यादा नहीं। जब गाड़ी रोकेंगे तो मीटर में निश्चित की हुई रकम भाड़े के रूप में डाल देनी पड़ती है। आधे या एक घंटे के लिए जैसी जगह मिले, उसके अनुसार पच्चीस सेंट से एक डालर तक भाड़ा चुकाना पड़ता है।

यदि हम किसीसे कहीं मिलने गये और आधे घंटे से ज्यादा लग गया तो फिक्र हो जाती थी कि गाड़ी के पार्किंग का समय पूरा हो गया। यदि कोई किसीको खाने के लिए बुलाता है तो वह आनेवाला सबसे पहले यह सवाल पूछता है कि उनके यहां आने के लिए गाड़ी कहां पार्क करनी चाहिए। मोटर को लेकर उनके रोजमर्रा के जीवन में अनेक परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं। मोटर के बड़े-बड़े कारखाने और उनके मालिक तो वहां के राजनैतिक और सामाजिक जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रखते ही हैं। इन्हीं कारखानों के ऊपर अमरीका के अधिकतर लोहे के कारखानों का कार्यक्रम अवलंबित रहता है। मोटरों की संख्या इतनी बढ़ गई है कि पार्किंग के लिए अलग-अलग बड़े-बड़े मैदान छोड़ने पड़ते हैं। कई मंजिलों की ऊंची-ऊंची इमारतें खास मोटर खड़ी करने के लिए बनानी पड़ती हैं।

शहरों और मकानों को तोड़-ताड़कर हर जगह नये-नये रास्ते बनाये जाते हैं। उनको चौड़ा किया जाता है। मुख्य रास्ते ग्रांड ट्रंक रोड, हाई वे, सुपर हाई वे आदि नाम से पुकारे जाते हैं। तेज़ चलने-वाली मोटरें अलग रास्तों पर से जाती हैं। लंबी मुसाफिरी करने-

वाली गाड़ियां दूसरे खास रास्ते पर से जाती हैं। इसकी वजह से शहरों की रचना नये ढंग से होती जा रही है।

होटलों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहा है। पहले तो ऊंचे-ऊंचे जाने का प्रयत्न होता रहा। एक होटल चालीस मंजिला बना तो दूसरा साठ का और तीसरा पिचहत्तर का। लेकिन अब शहर से कुछ दूरी पर सिर्फ़ एक मंजिल के होटल बनने लगे हैं। इनको 'मोटल' कहते हैं। यह मोटर और होटल दो शब्दों से मिलकर एक नया शब्द बना है। मोटर में बैठकर अपने कमरे के सामने आकर रुक जायं, ऐसी सुविधा इनमें है। 'ड्राइव-इन' का शौक बढ़ता जा रहा है। हर जगह मोटर में बैठे-बैठे काम हो जाय या अपने गंतव्य स्थान के निकट-से-निकट तक मोटर में बैठे-बैठे पहुंच जायं, इसकी तरफ विशेष प्रवृत्ति है।

इसलिए अब वहां खुले बड़े मैदान में सिनेमा दिखाने का रिवाज बढ़ रहा है। आप अपनी मोटर में बैठे-बैठे ही टिकट खरीदकर मोटर को मैदान में लगा लीजिये और सामने बहुत बड़े परदे पर मोटर में बैठे-बैठे देख लीजिये। वहां पास में खड़ा हुआ आदमी आपको एक छोटा-सा लाऊड-स्पीकर दे देगा। आप इसे मोटर में रख लीजिये और कम-ज्यादा करके जितने ज़ोर से चाहें उस आवाज में सिनेमा की बातचीत सुन लीजिये। साथ ही यदि ठंड हो तो वह बिजली का छोटा-सा हीटर भी दे देगा, जो आपको गरम किये रहेगा।

हम लोगों को न्यूयार्क के टैक्सी और बस-ड्राइवरों का अनुभव अच्छा नहीं हुआ। ये लोग शिष्टाचार-रहित व्यवहार करने में कुशल हैं। स्त्रियों से भी नम्रता या सभ्यता से बात करने की उन्हें कोई परवा नहीं है। स्त्रियों को हुक्म देते हुए से बात करेंगे। उनकी बातों का भी जवाब कई ड्राइवर तो बहुत बुरी तरह से देंगे। मौका हुआ तो उन्हें झिड़क देने में भी उनको कोई संकोच नहीं होता।

यह जरूर है कि उनको सारे काम खुद करने पड़ते हैं। ड्राइवर के अलावा बस में कोई कंडक्टर नहीं होता। बस के दरवाजे खोलना, पैसे इकट्ठे करना, गाड़ी चलाना आदि सब काम उसीको करने पड़ते हैं।

इसके लिए उसको उठने की ज़रूरत नहीं पड़ती। बटन दबाते ही दरवाजे खुल जाते हैं और बन्द हो जाते हैं। पैसे लेने के लिए भी बहुत सुविधाजनक मशीन लगी रहती है। फिर भी उसका काम मुश्किल तो होता ही है। इसलिए उनमें से बहुत-से लोग चिड़चिड़े हो जाते हैं। आपने पूरे आवश्यक पैसे पहले से निकालकर नहीं रखे या यदि आप नये हों तो पूछें कि कितने पैसे देने हैं या चिल्लर वापस देनी पड़े तो उसको कठिनाई होती है। आप पूछें कि आपको फलानी जगह जाना है तो कहां उतरना चाहिए, यह भी सब ड्राइवरों को अच्छा नहीं लगता।

एक बार एक स्त्री, मेरे सामने ही, ड्राइवर से पूछ बैठी कि उसको जिस जगह जाना है, वह कितनी दूर है। ड्राइवर ने उसको झिड़क दिया और बुरी तरह से कहा कि उसे क्या मालूम। स्त्री ने फिर अच्छी तरह से कहा कि उसे कहां उतरना चाहिए, यह तो बता दें, तब भी ड्राइवर ने कहा कि उसे स्वयं जानकारी लेकर आना चाहिए था, वह कुछ नहीं जानता। स्त्री ने फिर कहा, "आप इतनी बुरी तरह से बातें क्यों करते हैं" तो उसका जवाब मिला, "मैं तो ऐसे ही बात करूंगा, तुमको जो करना हो करो।" वह स्त्री तो बेचारी सिटपिटाकर अगले पड़ाव पर उतर पड़ी। यही हाल न्यूयार्क के कई टैक्सी-ड्राइवरों का है। शाम को आफिस बंद होने के समय टैक्सी मिलना मुश्किल हो जाता है। कई बार आधा-पौन घंटे तक ठहरना पड़ता है। जहां भी गाड़ी खाली दिखाई दी दौड़कर उसका ध्यान अपनी तरफ खींचकर उसे रोकने का प्रयत्न करना पड़ता है। कई बार वह किसी ड्यूटी पर जा रहा हो तो गाड़ी रोकता नहीं और ऐसी हालत में आपको झुंझलाहट होना स्वाभाविक ही है।

एक बार हम लोग अपनी एक अमरीकी महिला दोस्त के साथ थे। उसने हम लोगों को एक होटल में चाय-पानी के लिए बुलाया था। बाहर आते ही टैक्सी मंगाई। उसमें हम लोगों को साथ लेकर वह सवार हो गई। टैक्सी चली तो उसने अपने घर का पता ड्राइवर को बता दिया कि वह हमें वहां ले जाय। टैक्सीवाला आग-बबूला हो गया। वह

जगह सिर्फ़ दो-तीन फ़र्लांग थी। उसने तुरंत कहा, "इतनी थोड़ी दूर जाने के लिए मुझे क्यों रोका ? इतना नजदीक तो आपको पैदल चला जाना चाहिए था। मुझे कई इकतर्फ़े रास्तों को बचाते हुए चक्कर लेकर जाना पड़ेगा। यह समय तो बड़ा व्यस्त और कमाई का है।" इत्यादि-इत्यादि। हमारी दोस्त भी कुछ अजीब जरूर थी। इतनी-सी दूरी के लिए उसको टैक्सी करने की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी जब उसने टैक्सी कर ली तो टैक्सी-ड्राइवर का यह फर्ज था कि गंतव्य स्थान पर हमको ठीक से पहुंचा दे। अधिक-से-अधिक वह कुछ अधिक टिप की अपेक्षा रख सकता था। वह न केवल बोलता ही गया, बल्कि लड़ाई पर भी उतर आया। हमारी दोस्त ने तुनकमिजाजी से कहा कि गाड़ी यहीं रोक दे। गाड़ी रुक गई और हम वहीं उतर पड़े। इसपर टैक्सीवाले ने कहा कि तुम तो इसलिए उतरना चाहते थे कि टिप न देनी पड़े। हमारी दोस्त की मंशा यह कतई नहीं थी। ड्राइवर का यह रुख देखकर हमको भी बहुत बुरा लगा और उस बेचारी दोस्त पर दया भी आई। उसने गुस्से में वहीं उतरकर एक डॉलर का नोट ड्राइवर को थमाया और चिल्लर वापस लिये बिना ही हम लोगों को लेकर अपने घर का रास्ता नापा।

: २ :

अमरीका का युवक-आंदोलन

अमरीका को देखने और वहां के लोगों से मिलने का आकर्षण हरेक भारतवासी के मन में बना रहता है, इसलिए जब हम लोगों ने अमरीका की धरती पर पैर रखा, तब खुशी होना स्वाभाविक था। यह खुशी दुगुनी हो गई जब हमारे स्वागत के लिए वहां के अनेक युवक-संगठनों की सहकारिणी समिति के प्रतिनिधि खुले दिल से हमारे स्वागत के लिए तैयार थे। 'याक' अमरीका की 'नेशनल सोशल वेलफ़ेयर असेंबली' का युवक-विभाग है, जो अमरीका के करीब-करीब सभी प्रमुख युवक-संस्थाओं के काम को योजनाबद्ध करता है। भारत में हमारी 'वर्ल्ड असेंबली ऑव यूथ' की समिति, इसी नाम की जिस अंतर्राष्ट्रीय संस्था से जुड़ी हुई है, 'याक' का संबंध भी उसी संस्था से है। अंतर्राष्ट्रीय युवक-सम्मेलन में अमरीकी युवकों का प्रतिनिधित्व इसी संस्था की मार्फ़त होता है। अमरीका की 'नेशनल स्टूडेंट्स एसोसियेशन', 'वाई. एम. सी. ए.', 'यंग क्रिश्चियन वर्कर्स', 'वाई. डब्ल्यू. सी. ए.', आदि बड़ी-बड़ी शक्तिशाली युवक-संस्थाएं इसकी सदस्य हैं। 'यंग डेमोक्रेट्स' और 'यंग रिपब्लिकन्स' ने भी इसके सदस्य बनकर इसकी ताक़त बढ़ाने का निश्चय किया है। इसके कारण अब तो यह संस्था, सभी मानों में, अमरीका के युवकों का प्रतिनिधित्व करनेवाली बन गई है।

अमरीका का युवक-आंदोलन अभी तक मजबूत इसलिए नहीं बन पाया कि पहले शायद इसकी आवश्यकता भी इतनी महसूस नहीं होती थी, जितनी कि अब हो रही है। 'याक' की तरफ़ से किसी विदेशी युवक-प्रतिनिधि-मंडल को आमंत्रित करके अमरीका में बुलाने का यह पहला ही अवसर था। जबसे उन्होंने अपने काम के विस्तार करने का

निश्चय किया तबसे विदेशों से युवक प्रतिनिधियों को बुलाने और उनको अपना देश दिखाने पर काफ़ी महत्व दिया गया है। इसी तरह से वे अपने युवक-नेताओं को भी अलग-अलग देशों में भेजकर वहां की जानकारी से अवगत कराने के प्रयत्न में हैं। जैसे ही हमारी दो महीने की यात्रा पूरी हुई कि पश्चिमी अफ्रीका के कई देशों का एक मिला-जुला युवक-मंडल उनके आमंत्रण पर वहां पहुंच गया। इस तरह हम लोगों को अफ्रीका के साथियों से भी न्यूयार्क में मिलने का मौका मिला। इसकी हम सभीको बड़ी खुशी हुई।

अमरीका में हमने पूर्वी से पश्चिमी समुद्र तक और उत्तर से दक्षिण तक बारह प्रांतों का कोई आठ हजार मील का दौरा किया। प्रतिनिधि-मंडल के सभी सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताएं ध्यान में रखकर 'याक' ने हमारे प्रवास का बहुत ही सधा हुआ, सुनियोजित, कार्यक्रम बनाया था।

हमारे अमरीका-प्रवास का कार्यक्रम बहुत दिनों पहले से ही तय हो चुका था और हमारा वहां का दौरा औपचारिक रूप से शुरू होने की तारीख भी, सबकी सुविधानुसार, तय हुई थी। उस दिन हमारे 'याक' के भाइयों ने एक प्रीतिसम्मेलन का आयोजन किया था। अनेक प्रतिष्ठित लोग, जो युवक-आंदोलन में रुचि रखते हैं, वहां इकट्ठे हुए थे। हमारे देश के राजदूत श्री एम० सी० छागला और न्यूयार्क-स्थित कौन्सल-जनरल श्री गोपाल मेनन भी उपस्थित थे। इस उत्सव के दिन हम लोगों को पता चला कि वह दिन अब्राहम लिंकन का जन्म-दिन था। इस महान व्यक्ति की जयंती पर हम लोग इकट्ठे हुए और उस सुदिन से हमारा दौरा आरंभ हुआ। जब मैंने अपने भाषण में इसका उल्लेख किया तो उपस्थित अमरीकी भाई गद्गद् हुए बिना नहीं रह सके। ऐसा दिखाई दिया कि बड़ी-बड़ी बातों और भाषणों का उन लोगों पर उतना असर नहीं पड़ता जितना कि मामूली और छोटी-छोटी रोजमर्रा की बातों और व्यवहार का पड़ता है।

अमरीका में युवकों और विद्यार्थियों के संगठन पर्याप्त संख्या में हैं। 'यंग एडल्ट कौंसिल' में छब्बीस संस्थाएं शामिल हैं। 'नेशनल स्टूडेंट्स

एसोसियेशन और 'नेशनल कौंसिल ऑव कैथोलिक यूथ' की तरह की अनेक संस्थाएं तो बहुत बड़ी-बड़ी हैं। 'वाइ. एम. सी. ए.', 'वाइ. डब्ल्यू. सी. ए.' और 'यंग क्रिश्चियन वर्कर्स' जैसी संस्थाएं समाज-कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। आम तौर पर युवक-संगठनों में राजनैतिक चेतना की कमी है, किंतु 'यंग डेमोक्रेट्स', 'यंग रिपब्लिकन्स' और 'नेशनल स्टूडेंट्स एसोसियेशन' राजनीति की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक सचेत हैं। कह सकते हैं कि देश में सक्रिय युवक-संगठन तो बहुत हैं, लेकिन राष्ट्रव्यापी स्तर पर किसी युवक-आंदोलन का अस्तित्व नहीं हैं। अब वे अपनी इस कमी को महसूस करने लगे हैं और इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। 'यंग डेमोक्रेट्स' और 'यंग रिपब्लिकन्स' संस्थाएं, जितनी उम्मीद की जाती है, उतनी मजबूत और सुसंगठित नहीं है। पिछले कुछ समय से अमरीका के दोनों प्रमुख दल—डैमोक्रैटिक दल और रिपब्लिकन दल—एक सुसंगठित देशव्यापी युवक-आंदोलन की आवश्यकता अनुभव करने लगे हैं, और शायद इसी कारण इन दोनों राजनैतिक दलों के इन युवक-विभागों ने 'याक' में शामिल हो जाने का निश्चय किया है। 'याक' अपनी तरफ से भी देश के युवक-संगठनों की प्रवृत्तियों को सुसंगठित और सुनियंत्रित रूप में चलाने का बहुत प्रयत्न करता है, ताकि एक जागरूक और रचनात्मक युवक-आंदोलन का निर्माण हो सके।

'नेशनल स्टूडेंट्स एसोसियेशन' अमरीकी विद्यार्थियों की एकमात्र संस्था के रूप में सरकार द्वारा मान्य है। इसके कार्यकर्ताओं से हमने कई बार मुलाकात की। यह विद्यार्थियों की सबसे प्रमुख संस्था है। इसका मुख्य दफ़्तर फिलेडलफ़िया में है। इस संस्था को संगठित हुए कोई बारह वर्ष हो गये। कोई व्यक्ति सीधा इसका सदस्य नहीं बन सकता। कालेजों और विश्वविद्यालयों की विद्यार्थियों की सरकारें इसकी सदस्य हैं। फिलहाल, कहते हैं, इस एसोसियेशन से संबंधित संस्थाओं की सदस्य-संख्या करीब दस लाख है। यह बीस क्षेत्रों में विभाजित है। इसकी कार्यकारिणी इन बीसों क्षेत्रों के अध्यक्ष और चालीस हजार विद्यार्थियों का प्रतिनिधित्व करनेवाले क्षेत्र से एक-एक सदस्य को लेकर बनती है।

एसोसियेशन की ओर से हर वर्ष एक अंतर्राष्ट्रीय संपर्क सेमीनार का आयोजन किया जाता है। एसोसियेशन के छः चुने हुए पदाधिकारी हैं, जिनमें से एक को छोड़कर शेष सब पूरा समय देनेवाले कार्यकर्ता हैं। ये लोग अपनी एक साल की पढ़ाई छोड़कर एसोसियेशन का कार्य-भार संभालते हैं।

जो पदाधिकारी चुने जाते हैं, वे विद्यार्थियों में से ही होते हैं। पर चूंकि चुने जाने पर उन्हें संस्था का काम दिल लगाकर और पूरा समय और शक्ति देकर करना चाहिए, इसलिए उनको पदाधिकारी रहने के समय तक पढ़ाई छोड़नी पड़ती है। यही कारण है कि संस्था इतनी सशक्त हो पाई है। यह पद्धति हमें पसन्द आई। एक बार चुना गया व्यक्ति दुबारा उसी पद पर नहीं चुना जा सकता। इन पदाधिकारियों को नियमित भत्ता भी संस्था की तरफ से मिलता है। क्योंकि ये अपना पूरा समय संस्था के काम के लिए देते हैं, इसलिए इसकी आवश्यकता हो जाती है।

उनकी विद्यार्थी-सरकारें हमारे विद्यार्थी-संघों के समान ही हैं, किंतु उनका दायरा और अधिकार अपेक्षाकृत विस्तृत हैं। वे विद्यार्थियों की आम सभाओं द्वारा निर्वाचित होती हैं और विभिन्न अधिकारों से संपन्न होती हैं। स्पोर्ट और खेल-कूद की प्रवृत्तियां उनके ही नियंत्रण में चलती हैं और यह उनकी आमदनी के सबसे बड़े स्रोत भी हैं। वे स्टूडेंट कोआपरेटिव स्टोर्स, किताबों की दूकानें, कैफे-टीरिया इत्यादि का प्रबंध भी अपने अधिकार में रखती हैं। अनेक विद्यार्थी-सरकारों को न्याय के अधिकार भी प्राप्त हैं। ये सरकारें विद्यार्थियों में नेतृत्व के प्रशिक्षण केंद्रों के रूप में अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुई हैं। इन विद्यार्थी-सरकारों के द्वारा विश्वविद्यालयों के क्षेत्रों में अनेक अखबार भी निकलते हैं, जिनमें दैनिक भी होते हैं। एक यूनिवर्सिटी कैंपस से प्रकाशित होनेवाले एक दैनिक को नगर का प्रतिष्ठित पत्र होने का सम्मान प्राप्त है।

एनआर्बर युनिवर्सिटी की विद्यार्थियों की सरकार अपना खुद का एक दैनिक निकालती है। इसकी दस हजार प्रतियां रोजाना छपती

हैं। अखबार से सालाना १ लाख ५० हजार डालर आते हैं। मुख्य कमाई विज्ञापन के द्वारा होती है। विद्यार्थी-सरकार का सालाना खर्च करीब बारह हजार डालर होता है।

ऊपर विद्यार्थी-सरकारों के पक्ष में कहा गया है, किंतु हम यह भी कहेंगे कि विद्यार्थियों की स्कूल-कालेजों से अतिरिक्त प्रवृत्तियों के बौद्धिक पक्ष की ओर कम ध्यान दिया जाता है। केवल सामाजिक जीवन पर ही अधिक बल दिया जाता है।

देश के प्रगतिशील तत्वों, विशेषकर युवकों के बीच, डेमोक्रेटिक पार्टी अधिकाधिक लोकप्रिय होती जा रही है। वे खूब परिश्रम कर रहे हैं, और पूरी उम्मीद करते हैं कि अगले राष्ट्रपति के चुनाव में उनका दल ही विजयी होगा।[1] हां, उन्हें पूरा निश्चय है कि चुनाव का यह संघर्ष बड़ा ज़ोरदार सिद्ध होगा। जब हम लोग अमरीका में थे तब ये चार व्यक्ति ही मैदान में थे—निक्सन और राकफेलर रिपब्लिकन दल की ओर से, केनेडी और हंफ्री डेमोक्रेटिक दल की ओर से।

यहां हम खास तौर पर अमरीकी विद्यार्थियों और आम तौर पर वहां के युवकों के इस रुख का जिक्र करना चाहेंगे, जो उन्होंने अमरीकी राजनीति, अर्थनीति और सामाजिकता के संबंध में अपनाया है। वे अपनी इन नीतियों के प्रति कुछ इतने ज्यादा संतुष्ट हैं कि इन क्षेत्रों में किसी भी तरह के परिवर्तनों की संभावनाओं पर विचार ही नहीं करना चाहते। 'अमरीकी जीवन-शैली' के वे अंध-भक्त से हो गये हैं। बेहिचक, बिना किसी नुक्ताचीनी के, उन्होंने उसे स्वीकार कर लिया है। परिणामस्वरूप उनकी धारणा बन गई है कि जीवन का इससे अच्छा और कोई तरीका हो ही नहीं सकता। इस विश्वास के कारण नये विचारों को ग्रहण करने का वे आम तौर पर प्रतिकार करते हैं।

अमरीका में पढ़नेवाले भारतीय विद्यार्थियों के संबंध में कुछ कहना हमें कठिन प्रतीत होता है, क्योंकि तीन हजार विद्यार्थियों में से हम बहुत थोड़े विद्यार्थियों से ही मिल पाये थे। किंतु हमने उनके

[1] यह सत्य निकला; श्री केनेडी निर्वाचित हो गये।

संबंध में, जिन विश्वविद्यालयों में हम गये, वहां के अधिकारियों और विदेशी विद्यार्थी-परिषदों की राय जानने का प्रयत्न किया। उनकी राय में ज्ञान के क्षेत्र में हमारे विद्यार्थियों को विदेशी विद्यार्थियों में बहुत ऊंचे दर्जे का स्थान प्राप्त है। किंतु उनके विरुद्ध आम तौर पर एक शिकायत सभी जगह सुन पड़ती है। वह यह कि भारतीय विद्यार्थी प्रायः एकांत-प्रिय होते हैं। वे लोगों में अच्छी तरह घुलते-मिलते नहीं। कुछ दार्शनिक प्रवृत्ति के होने के कारण अहिंसा, सांस्कृतिक परंपरा और आत्मा-परमात्मा के बारे में ही ज्यादा बातें करने की ओर उनका झुकाव रहता है। हमें ऐसा भी बताया गया कि हमारे विद्यार्थी अपना एक अलग ही दल बनाकर उसीमें विचरते हैं और दूसरों से मिलना-जुलना कम पसंद करते हैं।

उनकी भी अपनी कई कठिनाइयां हैं। ये नवयुवक शिक्षा के क्षेत्र में अच्छी प्रगति करके भी शायद कुछ कुंठाओं के शिकार हैं, विशेषकर वे अपने भविष्य के संबंध में एक निश्चयहीनता से आशंकित हैं। वे हमारे देश के सर्वश्रेष्ठ बुद्धिजीवियों में से हैं और यदि वे स्थायी रूप से अमरीका में बस जाने का निश्चय कर लें तो उन्हें अच्छी-खासी नौकरियों की कोई कमी नहीं होगी, किंतु उनमें से अधिकांश, देश-भक्ति की भावनाओं से प्रेरित होकर, स्वदेश में ही, अपेक्षाकृत कम वेतन पर भी, काम करने के इच्छुक हैं, यद्यपि वे जानते हैं कि इसमें उन्हें काफ़ी आत्म-त्याग करना पड़ेगा। हमें टेकनिकल शिक्षा-प्राप्त युवकों की बहुत आवश्यकता है। दुर्भाग्य से ठीक-ठीक व्यवस्था न होने से हम इन प्रशिक्षित नौजवानों को उचित वेतन और उचित पद पर नियुक्त नहीं कर पाते। परिणाम यह होता है कि हमारे अनेक नव-युवक वहीं रह जाने का आर्कषण रोक नहीं पाते, या सिवा वहीं नौकरी कर लेने के उनके सम्मुख और कोई चारा नहीं होता। हम उनकी उपयोगी योग्यताओं का लाभ नहीं उठा पाते। अपनी सरकार से अपेक्षा की जाती है कि इस समस्या पर वह पूरी गंभीरता से ध्यान दे, ताकि हमारे देश को इन सुशिक्षित नवयुवकों का देश की उन्नति और विकास में पूरा उपयोग मिल सके।

हमें पूरी सतर्कता से यह प्रयत्न करना चाहिए कि अमरीकी जनता हमारी विचार-धारा और हमारे देश से अधिक तथा स्पष्ट रूप से परिचित हो सके । ऐसे गैर-सरकारी प्रतिनिधि-मंडल, जैसाकि हमारा था, सरकारी प्रतिनिधि-मंडलों की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छे संबंध स्थापित कर सकते हैं। अनौपचारिक रूप से अपेक्षाकृत बहुत अधिक कार्य कर सकते हैं । मुझे तो पूरा विश्वास है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से जितने ही अधिक सद्भाव-मंडलों का गैरसरकारी स्तर पर आना-जाना होगा, उतने ही हमारे दोनों देश एक-दूसरे के दृष्टिकोण को अच्छी तरह समझकर एक-दूसरे के अधिकाधिक समीप आएगे । हमारे स्वदेश वापस लौटने पर अमरीका में स्थित भारतीय राजदूत श्री छागला, कौंसल-जनरल श्री गोपाल मेनन के आये हुए पत्रों से भी इस धारणा की पुष्टि होती है ।

इस प्रवास से हमें जो कुछ अनुभव हुआ, वह हमारे देश के लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता है। हमें आशा है कि इन अनुभवों के कारण हम यहां पर एक शक्तिशाली और संगठित युवक-आंदोलन स्थापित करने की दिशा में और अधिक सक्रियता से प्रयत्नशील हो सकते हैं, जोकि देश के प्रजातांत्रिक विकास और उन्नति में अपना पूरा सहयोग देगा। यह कार्य किसी एक संगठन के द्वारा अकेले ही पूरा नहीं किया जा सकता। हमारे युवकों के सम्मुख प्रजातंत्र की सफलता का महान कार्य है। हम अपने उद्देश्यों में तभी सफल हो सकते हैं जब हमारे लाखों युवक-युवतियां पूरी शक्ति से अपना कर्तव्य निभाने में लग जायं। इसके लिए आवश्यकता है एक ताकतवर और संगठित युवक-आंदोलन की । हमें आशा है, विश्व-युवक-संघ की भारतीय शाखा देश के समस्त प्रजातांत्रिक युवक-संगठनों को एक ही झंडे के नेतृत्व में संगठित करके इस शुभ उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में अग्रसर होगी ।

: ३ :

कुछ प्रमुख मुलाकातें

न्यूयार्क में हमें श्रीमती फ्रैंकलिन रूजवेल्ट से मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके हृदय में हमारे प्रधानमंत्री के प्रति बड़ा आदर-भाव दिखाई दिया। उनकी वैदेशिक नीति की भी वह बड़ी प्रशंसक हैं। उन्होंने कहा कि हमारे देश की विदेश-नीति बिल्कुल सही है और संघर्षों में फंसी हुई आज की इस दुनिया के लिए शायद सबसे बड़ी उम्मीद है। श्रीमती रूजवेल्ट सचमुच एक महान महिला हैं। इनका व्यक्तित्व एकदम सादा होते हुए भी बड़ा प्रभावशाली है। इतनी उम्र हो जाने पर भी इतना काम करती हैं कि हम नौजवानों को उन्हें देखकर ईर्ष्या होना स्वाभाविक है। दिन-रात सामाजिक सेवा में लगी रहती हैं। कोई काम छोटा हो या बड़ा, उसे करने में किसी तरह से सकुचाती नहीं है। बड़ा व्यस्त और परिश्रमी जीवन-क्रम बना रखा है। इतनी मिलनसार हैं कि उनसे मिलकर हमें लगा कि हम किसी अपने ही निकट के जान-पहचानवाले, सहानुभूति रखनेवाले व्यक्ति से मिले हों। उनकी मिठास और सबकी हर तरह से मदद करने की वृत्ति सबके मन को जीत लेती है।

न्यूयार्क में जिस समय हम थे, वहां श्री रूजवेल्ट के जीवन को दर्शाने-वाला नाटक चल रहा था। हम भी उसे देखने गये। बड़े सुंदर ढंग से उनका चरित्र-चित्रण किया गया था कि किस तरह पोलियो के आक्रमण से उनका शरीर कृश हो गया था, फिर भी मजबूत इच्छा-शक्ति से उन्होंने हर कठिनाई का सामना किया और अपने मुल्क के नेता बने और अनेक वर्षों तक अमरीका के भाग्य-विधाता बने रहे। श्रीमती रूजवेल्ट को ऐसे विशिष्ट व्यक्ति की जीवन-संगिनी बनने का सौभाग्य मिला था। उनका बचपन और शादी के बाद का भी जीवन वर्षों तक एक मामूली, शर्मीली और सामान्य घरेलू स्त्री के समान ही बीता, पर धीरे-धीरे उन्होंने मेहनत

और सतत सेवा करके अपने खुद के लिए अमरीका के लोगों के हृदय में हमेशा के लिए स्थान बना लिया।

न्यूयार्क में हमें श्री नार्मन टामस से भी मिलने का अवसर मिला। वह पिछले राष्ट्रपति के चुनाव में एक उम्मीदवार थे। श्री टामस समाजवादी आंदोलन के समर्थक हैं। वह गहरे विचारक हैं। उनका दावा है कि उनके अनेक सिद्धांतों को, अमरीकी राजनैतिक पार्टियों ने, धीरे-धीरे स्वीकार कर लिया है। उनके विचारों की एक झलक हमें उनके इस कथन में मिली—"चूंकि मैक्सिको के मजदूर-वर्ग का काम सिर्फ मौसमी है, वे अपने-आपको पूरी तरह संगठित नहीं कर पाये हैं। नतीजा यह हुआ कि मालिक वर्ग उनकी इस कमजोरी का नाजायज फायदा उठा रहा है।" जब उनसे यह प्रश्न किया गया कि अमरीकी मजदूर-वर्ग ने गत चुनाव में सोशलिस्ट पार्टी के विरुद्ध डेमोक्रेटिक पार्टी को अपने मत क्यों दिये, तब उन्होंने कहा, "यह मसला बड़ा उलझा हुआ है। शायद अमरीकी जनता दो पार्टियों की प्रणाली की इतनी अभ्यस्त हो गई है कि एक तीसरी पार्टी का जन्म उसको पसंद नहीं आया। इसके अलावा मजदूर-वर्ग भी सोशलिस्ट पार्टी के क्रांतिकारी परिवर्तनों के लिए कहां पूरी तरह से तैयार था?"

न्यूयार्क से हम वाशिंगटन गये। वहांपर हम 'यंग रिपब्लिकन्स' और 'यंग डेमोक्रैट्स' के मेहमान थे। 'यंग डेमोक्रैट्स' के एक्जीक्यूटिव सेक्रेटरी श्री रिचर्ड मर्फी ने हमें डेमोक्रेटिक पार्टी के इतिहास से परिचित किया। उन्होंने कहा कि उनकी पार्टी का दृष्टिकोण, सरकार के अधिकाधिक अधिकार ग्रहण करने, जनहित में खूब खर्च करने और सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों के संचालन के पक्ष में है।

श्री मीड आलकार्न ने, जो उस समय अमरीका पर राज्य करनेवाली रिपब्लिकन पार्टी के अध्यक्ष थे, हमें बताया कि रिपब्लिकन पार्टी केंद्रीय सरकार के पास अधिक अधिकार होने के पक्ष में नहीं है। वे चाहते हैं कि प्रांत में और आम जनता के हाथों में अधिक शक्ति हो; नहीं तो देश तानाशाही की तरफ बढ़ सकता है। उनके हिसाब से डेमोक्रैट्स और उनमें इस बात को लेकर मूलभूत अंतर है। उन्होंने यह भी कहा कि

महत्वपूर्ण आर्थिक नीति में उनकी पार्टी 'कंजरवेटिव' है। वे मानते हैं कि राष्ट्रीय आय से ज़्यादा खर्च कर देना देश के हित में नहीं है। जैसे एक घर में होता है, उसी तरह देश में भी। कमाई से अधिक खर्च करना लाभदायी कैसे हो सकता है ? श्री आलकार्न ने बताया कि उनकी पार्टी का विश्वास तो एक संतुलित बजट और सरकार के द्वारा अपेक्षाकृत कम खर्च करने के पक्ष में है। डेमोक्रेट्स, इसके विपरीत, खर्च बढ़ाने के पक्ष में हैं। लेकिन इसका मतलब यह हुआ कि वे अपनी जवाबदारी आनेवाली पीढ़ी के ऊपर डाल देना चाहते हैं। जहांतक खेती का सवाल है, वे, किसानों को अपनी पैदावार का कम-से-कम एक निश्चित भाव जरूर मिले, इस पक्ष में हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अमरीका में पांच हजार डालर से ज्यादा कोई व्यक्ति एक वर्ष में किसी भी राजनैतिक पार्टी को धर्मादा नहीं कर सकता। जाइंट स्टाक कंपनी तो राजनैतिक पार्टियों को चंदा दे ही नहीं सकती।

हम कृषि-विभाग के कुछ अधिकारियों से भी मिले, जिनमें कृषि-विभाग के सेक्रेटरी श्री इजरा टेफ़्ट बेंसन भी थे। बातचीत का विषय था—४-एच आंदोलन और आवश्यकता से अधिक फसल का होना। हमें बतायागया कि प्रतिवर्ष करीब नब्बे लाख डालर की कीमत की अतिरिक्त पैदावार होती है, और इसका ठीक से बंटवारा करने में उन्हें कठिनाई होती है। यहांतक कि इसे यदि विदेशों को मदद के रूप में दे भी दिया जाय तो अन्य देशों में उसका भी उग्र विरोध किया जाता है। ४-एच कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह है कि अपने सदस्यों को अच्छा किसान बनाया जाय। इसके लिए उनकी मदद कुछ इस ढंग से की जाय कि वे अपने तजुर्बे से खुद-ब-खुद सीखें। ४-एच क्लब की सदस्यता ६ वर्ष से लेकर २१ वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के लिए खुली हुई है। सारे देश में ऐसे हजारों क्लब खुले हुए हैं और बहुत उपयोगी काम कर रहे हैं।

जब कृषि-विभाग के अधिकारियों ने हमसे कहा कि उस समय उनके सामने बड़ी-से-बड़ी समस्या यह है कि आवश्यकता से अधिक जो अनाज पैदा हो गया है उसका क्या करें। हमने कहा कि यह बात आप

हमसे करते हैं तब हमें ताज्जुब होता है। आपके यहां अधिक है और हमारे यहां कमी है। दोनों साथ में बैठकर बातें कर लें तो जरूर कोई-न-कोई समाधानकारक रास्ता निकल आयगा। उन्होंने कहा कि अगर कोई जहाज का किराया देकर ही यह अनाज यहां से ले जाय तो हम खुशी से देने को तैयार हैं, बशर्ते इससे दूसरे देशों में असंतोष न फैले। अन्य देशों के गेहूं की खपत कम हो या भाव गिर जायं तो वे हमसे नाराज होते हैं। इस-लिए इससे कठिनाइयां खड़ी हो जाती हैं।

ओर्गो के एक डेमोक्रेट नेता, सिनेटर डब्लू० मोर्स से हमारी मुलाकात हुई। उन्होंने आइजनहॉवर की शासन-व्यवस्था और रिपब्लिकन पार्टी की बड़ी आलोचना की। उनकी राय में रिपब्लिकन पार्टी चंद शक्तिशाली प्रतिगामियों का एक संगठन है। वे खुद पार्टी के अनुशासन को कोई ज्यादा महत्व नहीं देते हैं। उनके मत में किसी भी पार्टी का उद्देश्य आम जनता का कल्याण करना होना चाहिए, न कि महज कार्पोरेशनों के हितों की रक्षा में लगे रहना। डेमोक्रेट्स और रिपब्लिकनों के दृष्टिकोण में यही अंतर प्रमुख है। हां, रिपब्लिकनों में भी कुछ सिनेटर अपेक्षाकृत उदार दृष्टिवाले जरूर हैं, लेकिन जब मत देने का मौका आता है, तब वे उतने उदार नहीं रह पाते, क्योंकि उनकी एक आंख अगले चुनाव पर भी तो लगी रहती है। सिनेटर मोर्स की राय में स्वर्गीय श्री डलेस की विदेश-नीति संपूर्णतः अनैतिक थी। विश्व-शांति के संबंध में उन्होंने कहा, "आज रूस और अमरीका दोनों ही देश समान रूप से विश्व-शांति के लिए खतरा पैदा किये हुए हैं, क्योंकि दोनों ने ही हाइड्रोजन बम को अपनी नीति का आधार बना रखा है।" उन्हें उम्मीद थी कि भारत हमेशा तटस्थ ही बना रहेगा। उन्होंने कहा कि हां, यह कहने का हक उन्हें हासिल नहीं है कि हमारा देश सचमुच में किसी हद तक तटस्थ है।

जब हम वाशिंगटन गये तब वहां भी हमें कई नामी नेताओं से मिलने का अवसर मिला। श्री चेस्टर बाउल्स ने, जो भारत के भूतपूर्व राजदूत रह चुके हैं, एक मुलाकात के दौरान में हमसे कहा कि १९६० का वर्ष सारी दुनिया में नव चेतना लाने के लिए बड़ा ही रचनात्मक एवं कर्मशील होगा। अमरीका के लोग दो युगों में से गुजर चुके हैं। पहले वे अंग्रेजों से

स्वाधीन हुए। इस प्रयत्न में अमरीका के अधिकतर लोग शामिल हुए। लेकिन कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने इसका विरोध किया। उसके बाद जमाना आया सीमित प्रजातंत्रवाद का। शुरू में मताधिकार सिर्फ ज़मींदारों और पैसेवालों को मिला। स्त्रियों को तो मताधिकार था ही नहीं। लेकिन अब उनका देश ऐसी क्रांति के लिए तैयार हो रहा है, जोकि हर व्यक्ति की क्रांति होगी और जिसका लाभ हर व्यक्ति को मिलेगा। उनके देश में अब भी पैंतीस लाख आदमी बेकार हैं। करीब पांच करोड़ लोग ऐसे हैं, जो अपने धंधों से असंतुष्ट होने के कारण उन्हें बार-बार बदलते रहते हैं। सारे देश में करीब छः करोड़ सत्तर लाख लोगों को नौकरी मिली है।

श्री बाउल्स ने कहा कि अमरीका में हिंदुस्तान के लिए बड़ी गहरी मित्रता की भावना है। विशेषतः हमारी पंचवर्षीय योजनाओं को मदद पहुंचाने के विषय में तो उनमें बड़ी ही जागरूकता है। उनकी राय में अमरीका को चाहिए कि विदेशों में अधिक प्रशिक्षित विशेषज्ञ ही भेजे। अमरीका के युवक एक उलझे हुए और कुंठित दौर में से गुजर रहे हैं। सौभाग्य से अमरीकी जनता इस दौर के खतरों को समझने लगी है।

उन्होंने यह भी कहा कि चीन और रूस के दृष्टिकोण में कई बातों को लेकर अंतर पड़ना संभव है और आगे-पीछे वे एक-दूसरे से मिलकर काम न करें, यह भी संभव है। काश्मीर के बारे में उनकी राय थी कि यदि हम अंतर्राष्ट्रीय अदालत में जाते तो हम जीतते और हमारे लिए वही करना उचित था।

जज सौंध से भी हमारी मुलाक़ात हुई। ये एक भारतीय हैं, जो कई वर्षों से अमरीका में बस गये हैं और इस बार वहां की पार्लमिंट में चुने गए हैं। उन्होंने कहा कि पार्लमिंट में चुने जाने के बाद उनके पास अपने चुनाव-क्षेत्र से आम नागरिकों की तरफ से करीब पचास-साठ चिट्ठियां रोज आ जाती हैं। वहां उनके लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसी हर चिट्ठी का जवाब दें। अमरीका के लोग हिंदुस्तान के बारे में बहुत कम जानते हैं। हमें अधिक प्रयत्न करके वहां के लोगों को अपने देश के बारे में सही-सही जानकारी देना आवश्यक है। हिंदुस्तान के लोगों को अमरीका के बारे में बेमतलब की टीका-टिप्पणी करना बंद कर देना चाहिए। एक-दूसरे को

उपदेश देने से कोई लाभ नहीं होता। उन्होंने कहा कि दरअसल भारत और अमरीका दोनों ही देश आपस में एक-दूसरे से बहुत-कुछ सीख सकते हैं। उन्होंने यह भी बताया कि अमरीकी युवकों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे नये-नये तौर-तरीकों का प्रयोग बहुत उत्साह के साथ करते हैं। हाथ से काम करने में वहां ज़रा भी तौहीन या बुराई नहीं मानी जाती। भारतीय नौजवानों को अमरीकी नौजवानों से यह सबक तो सीख ही लेना चाहिए। काश्मीर की समस्या पर जज सौंध ने कहा कि उस मसले के बारे में अमरीकी जनता को अपेक्षाकृत सही जानकारी नहीं है। इसलिए वहां के अधिकांश अखबारों का रुख भारत के प्रति सहानुभूतिपूर्ण नहीं है। "लेकिन", जज सौंध ने कहा, "अमरीकी जनता के मन में भारत के विरुद्ध कोई ठोस अमैत्रीपूर्ण भाव नहीं है।"

वाशिंगटन मे रहते हुए हम तीन और बड़े महत्व के सिनेटरों से मिल सके। श्री जान केनेडी[1], श्री ह्यु बर्ट हंफ्री और श्री शर्मन कूपर। श्री कूपर तो भारत में अमरीकी राजदूत के पद पर भी रह चुके हैं। उन्होंने आशा प्रकट की कि इस प्रकार के और भी अनेक प्रतिनिधि-मंडल भारत से अमरीका आयं। श्री केनेडी और श्री हंफ्री दोनों ही बड़े व्यस्त व्यक्तियों में से थे। ये दोनों ही उस समय डेमोक्रेटिक पार्टी की तरफ से अमरीका के भावी प्रेसीडेंट होने की तैयारी में लगे हुए थे। श्री केनेडी को तो उसी दिन एक बिल पर भाषण देना था, जिसका ताल्लुक भारत से भी था। फिर भी जब उनको पता चला कि हम भारत से युवकों का एक प्रतिनिधि-मंडल लेकर आये हैं तो वे अपनी सीट छोड़कर ऊपर गेलरी में हमसे मिलने के लिए आ गये। कुछ गलतफहमी होने से जब वह ऊपर आये, हमलोग इधर-उधर हो गये थे। वह एक बार नीचे जाकर फिर दुबारा हमसे मिलने के लिए ऊपर आये। हमारी कुशलक्षेम पूछी और अपनी शुभकामनाएं जताईं। हमारे 'याक' के साथी श्री फ्रेंक फरारी से पूछा कि हमें किसने निमंत्रित किया है और खर्चे आदि की व्यवस्था कैसे हुई है। श्री केनेडी अमरीका के एक बहुत बड़े धनी परिवार के हैं। वहां के इतने महत्वपूर्ण नेता होते हुए भी वह हमसे बड़े मित्र-भाव से मिले। उनका व्यक्तित्व बड़ा सौम्य और सज्जनता से भरा हुआ

[1] अब अमरीका के राष्ट्रपति

मालूम दिया। उनके मित्रतापूर्ण व्यवहार का हम सभी पर अच्छा असर पड़ा।

श्री हंफ्री भी ऊंचे दर्जे के और बड़े योग्य नेताओं में से हैं। उनसे थोड़ी-सी देर के लिए ही मुलाकात हो सकी। उन्होंने भी हमें अपनी शुभकामनाएं दीं। अमरीकी प्रेसिडेंट पद के लिए चार प्रमुख उम्मीदवारों में से दो से वाशिंगटन में और बाद में तीसरे, श्री राकफेलर से न्यूयार्क में मिलने का हमें सौभाग्य मिल सका। इसकी हमें बड़ी खुशी हुई और इसके लिए हम 'याक' के हमेशा आभारी रहेंगे।

मिशिगन प्रदेश के गवर्नर श्री विलियम्स से भी मिलने का हमें मौका मिला। ये डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता हैं। उन्होंने बताया कि अमरीका में हर दस व्यक्तियों के पीछे कम-से-कम एक को, जन्म से मृत्यु-पर्यंत के जीवन-काल में, किसी भी समय एक बार तो पागलखाने में जरूर जाना पड़ता है। अमरीका में भी वहां की राष्ट्रीय आय के अनुपात में आबादी अधिक तेजी से बढ़ रही है। प्रांत में जो टैक्स लगाया जाता है, उसका करीब ७५% केंद्रीय सरकार इकट्ठा करती है। केंद्रीय सरकार शिक्षण के लिए ३½% खर्च करती है। श्री विलियम्स, जिनको लोग प्रेम से 'सोपी विलियम्स' कहते हैं, बहुत लोकप्रिय हैं। उन्होंने बताया कि केंद्र में रिपब्लिकन सरकार है और वे डेमोक्रेटिक गवर्नर हैं फिर भी आपस में काम करना उतना मुश्किल नहीं है, जितना कि लोग अंदाज़ लगाते हैं। वे अपेक्षाकृत एक सुदृढ़ और सुनियंत्रित पार्टी संगठन में विश्वास करते हैं, किंतु यह आवश्यक नहीं मानते कि केंद्रीय सरकार को ज्यादा अधिकार दिये जायं। उनका कहना था कि शिक्षा आदि विषयों में विकेंद्रीकरण जरूर होना चाहिए। यह प्रजातंत्र के लिए अधिक अनुकूल है। विकेंद्रीकरण से हिटलरों की संभावना घट जाती है।

बोस्टन के मुख्य अखबार 'बोस्टन डेली ग्लोब' के मालिकों ने हम लोगों के सम्मान में एक छोटा-सा भोज दिया था। समारोह की व्यवस्था उन्होंने अपने अखबार के नये भवन में ही की थी, जिससे हमें अखबार छपने की पूरी विधि भी बताई जा सके। इस कारखाने में अखबार छापने की एकदम नई मशीन लगी है। सारी व्यवस्था मानों एक मशीन के समान

लगातार चौबीसों घंटे नियमित रूप से चलती रहती है। प्रत्येक दिन इस अखबार के करीब बीस संस्करण निकलते हैं। जैसे-जैसे खबरें आती रहती हैं, नये संस्करणों में उनको शामिल कर लिया जाता है। आस-पास के गांवों में जानेवाले संस्करण अलग होते हैं। सारा काम बड़ा व्यवस्थित था और लोगों को फुर्ती से काम करते हुए देखकर अच्छा लगा। हम लोगों को तो कौन-सा संस्करण नया है और कौन-सा पुराना, इसीको समझने में बड़ी कठिनाई होती थी।

सारे अखबार की छपाई में विज्ञापन की छपाई का विभाग बहुत बड़ा है। कमाई भी तो विज्ञापनों से ही होती है न? अखबार में विज्ञापन ही जगह भी ज्यादा घेरते हैं।

यह अखबार अमरीका के थोड़े-से प्रगतिशील अखबारों में से एक है। इसके संपादक-मंडल ने हम लोगों से भारत के बारे में कई सवाल पूछे और अपनी शुभकामनाएं प्रकट कीं।

बोस्टन में वाई० एम० सी० ए० की एक बहुत बड़ी शाखा है। इनकी वार्षिक सभा में हम लोगों को सम्मानित अतिथियों के रूप में आमंत्रित किया गया था। प्रेसिडेंट आइजनहोवर के सलाहकारों में से एक सज्जन उस सभा के मुख्य वक्ता थे।

जब हम हार्वर्ड पहुंचे तो वहां के बिजनेस स्कूल के अधिकारियों ने हम लोगों को दोपहर के खाने के लिए निमंत्रित किया। उन्होंने अपने स्कूल की मुख्य-मुख्य विशेषताएं बतलाई और कहा कि वे चाहते हैं कि उनके अनुभवों का लाभ हिंदुस्तान के उदीयमान नवयुवकों को प्राप्त हो। अधिक संख्या में हमारे यहां के विद्यार्थियों को वहां जाने में अनेक तरह की कठिनाइयां थीं। खर्च का तो प्रश्न था ही। उनको भी अपने देश के युवकों की तरफ ध्यान देना लाजमी था। एक विदेशी लड़के को वे लें तो उसका मतलब है कि उनके यहां के एक लड़के को उसकी विशेष पढ़ाई से वंचित रखें। इसलिए वे सोच रहे थे कि उनके शिक्षकों को बीच-बीच में एशिया के देशों में थोड़े-थोड़े समय के विशेष कोर्स लेने के लिए भेजें, जिससे यहां के लोग उनका अधिक-से-अधिक फ़ायदा उठा सकें। हम लोगों को यह कल्पना पसंद आई, क्योंकि हमारे देश में बढ़ते हुए औद्योगीकरण के

लिए इस तरह की विशेषता प्राप्त किये हुए नवयुवकों की बहुत आवश्यकता हो गई है। जो व्यापार और उद्योग चलाते हैं, वे यदि इस तरह के प्रगतिशील विचारों को समझें और जानें तो उससे हमारे उद्योगों को सही रास्ते पर चलाने और उनको बढ़ाने में मदद मिलेगी।

हार्वर्ड विश्वविद्यालय अमरीका के विश्वविद्यालयों में सबसे अधिक पुराना और सबसे अधिक धनवान भी है। जिस समय हम वहां गये थे, उनको और धन की आवश्यकता थी और वे करीब आठ करोड़ डालर से कुछ अधिक धन इकट्ठा करने की फ़िराक में थे। इससे पता चल सकता है कि उनका कार्यक्षेत्र कितना विस्तृत है।

उनके विद्यार्थियों में से करीब तीस प्रतिशत को वे वज़ीफ़ा देते हैं। सारे विद्यार्थियों में ७% विद्यार्थी विदेशों से आते हैं। व्यापारी जगत में जो उतार-चढ़ाव और नये-नये रुख दिखाई देते हैं, उनसे अपने-आपको पूरी तरह से अवगत रखना इनके मुख्य कामों में से एक है।

न्यूयार्क में यदि सबसे व्यस्त कोई आदमी होगा तो वह हैं वहां के लोकप्रिय गवर्नर श्री नेलसन रॉकफ़ेलर। हमारे प्रतिनिधि-मंडल ने अंत में उनसे मुलाकात की। इस महत्वपूर्ण मुलाकात व चर्चा के बाद अमरीका का हमारा दौरा औपचारिक तौर से पूरा हुआ। उन्हींके पूछने पर हमने अपने अमरीका के दौरे के अनुभव उन्हें बताये और कहा कि यह देखकर हमें बहुत ताज्जुब हुआ कि अमरीका की आम जनता दूसरे देशों की राजनीति से कतई अनभिज्ञ है और विदेशियों के जीवन में उनको विशेष दिलचस्पी नहीं है। अखबारों में भी विदेशी खबरें बहुत कम छपती हैं और उसका नतीजा वहां की परराष्ट्रीय नीति पर भी पड़ता है। भारत-सरीखे देश में, जो वहां से इतनी दूर स्थित है, लोग इस बात को समझ नहीं पाते हैं। हमारे विचारों को सुनकर वह एक तरह से खुश हुए और उन्होंने कहा भी कि उन्हें बहुत प्रसन्नता है कि बहुत थोड़े समय में ही हम लोग इस बात को समझ सके। हम लोग कहते हैं, यह बात सही है और यह उनकी कठिनाइयों में से एक है।

उन्होंने आगे चलकर यह भी कहा कि उनको विश्वास है कि भविष्य में दुनिया की राजनीति में अमरीका, भारत और ब्राज़ील को मिलकर बहुत

बड़ा काम करना है। भविष्य के संबंध में तो कुछ कहना बहुत कठिन है, पर वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए उन्होंने ब्राज़ील को इतना महत्व क्यों दिया, यह हम नहीं समझ सके। हो सकता है कि दक्षिण अमरीका के देशों में ब्राज़ील में लोकसत्ता का सबसे अधिक जोर है और शायद वे मानते हैं कि ब्राज़ील के दक्षिण अमरीका के नेता के रूप में आगे आने की पूरी संभावना है।

वापस लौटने के पहले हम लोगों ने एक छोटा यरवदा-चक्र उन्हें भेंट किया। यह भेंट उन्हें बहुत पसंद आई। उन्होंने कहा भी कि हम लोग इससे अधिक अच्छी भेंट उन्हें नहीं दे सकते थे। उन्होंने याद दिलाया कि १६३२ में जब वह भारत आये थे तब गांधीजी से मिलने का उन्हें मौका मिला था। उस समय गांधीजी चर्खे पर कात रहे थे। चर्खा भेंट करते समय मैंने उनसे कहा कि यह हमारी आजादी का प्रतीक तो है ही साथ ही हमारे देश के औद्योगिक प्रयत्नों का भी प्रतीक है। इसे हम उनको न्यूयार्क के गवर्नर की हैसियत से नहीं, बल्कि अमरीका के बड़े-से-बड़े उद्योगपति-परिवार के प्रतिनिधि रूप में भी भेंट कर रहे हैं। यह सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई थी।

श्री राकफ़ेलर बड़े सौम्य और सज्जन पुरुष हैं और हमें खुले दिल से बात करनेवाले सफल नेता लगे। उम्र में बहुत बड़े न होते हुए भी, करीब ५५ वर्ष के होंगे—वह बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। इतने व्यस्त रहते हुए भी हमसे बड़े प्रेम और मित्रता से मिले और बराबरी के नाते हम लोगों से वार्तालाप करते रहे।

श्री राकफ़ेलर रिपब्लिकन पार्टी के अनुयायी हैं और अपनी पार्टी की तरफ से अमरीका के अगले प्रेसीडेंट के चुनाव में खड़े होने की बड़ी तमन्ना रखते थे। बड़ी मेहनत करके उन्होंने अपने लिए अच्छा नाम और देशवासियों के दिलों में ऊंचा स्थान प्राप्त कर लिया था। अमरीका के लोग तो छोटी-छोटी बातों पर ही लट्टू हो जाते हैं। वह दो-चार बार रास्तों पर के छोटे-मोटे रेस्तरां में खाना खा आये। इसीकी बड़ी चर्चा रही और लोग मानने लगे कि इतने बड़े धनी घराने के आदमी होकर इस तरह सबसे बराबरी का व्यवहार करते हैं तो जरूर वे आम लोगों के हितैषी हैं। इतना

सब होते हुए भी पार्टी के अंदर श्री निक्सन के सामने इनकी एक न चली। वैसे, इनके विरोधी डेमोक्रेटिक दल के नेता भी यह मानते थे कि यद्यपि इस बार विजय उन्हींके दल की रहेगी, फिर भी राकफेलर की बजाय निक्सन को हराना उनके लिए अधिक आसान है। इसीलिए वे भी आशंकित थे कि रिपब्लिकन दल कहीं राकफेलर को अपनी पार्टी की तरफ से प्रेसीडेंटशिप के लिए नुमाइंदा न चुन ले।

इस तरह हम लोगों को मौका मिला कि हम अमरीका के अलग-अलग क्षेत्रों के उच्चकोटि के नेताओं से मिलकर बातचीत कर सकें और उनसे विचार-विनिमय कर सकें। इसकी वजह से हम लोगों को उनके देश की समस्याओं व उनके जीवन के अनेक पहलुओं से संबंधित उनके दृष्टिकोण को समझने में आसानी हुई।

: ४ :

अमरीका की राजनीति और भारत—१

जब अमरीकी दोस्तों से हम खूब घुल-मिल गये तो दिल खोलकर बातें होने लगीं। कई दोस्तों के दिमाग में संदेह था कि हमारा देश शायद साम्यवाद की तरफ झुकता जा रहा है। वे कहते कि जब श्री ख्रुश्चेव और श्री बुलगानिन भारत आये तब उनके प्रति किया गया सम्मान एक तरह से इस बात का सबूत था कि हमारा देश साम्यवाद और उसके नेताओं को चाहता है। हम लोग कहते कि यह बात सही नहीं है। जिस तरह आपका बड़ा शक्तिशाली देश है, उसी तरह आज दुनिया में रूस भी बड़ी शक्ति रखता है। ऐसा देश, जो कि करीब-करीब आधी दुनिया पर राज्य करता है, उसकी सरकार के सर्वोच्च नेता भारत में पहली बार आये थे, तो उनका स्वागत करना हमारी जनता के लिए स्वाभाविक था। अमरीका से जो भी नेता भारत में आये हैं, वे वहां की सरकार के उच्चतम अधिकारी नहीं थे। यदि आपके प्रेसीडेंट भारत में जायंगे तो उनका स्वागत भी हमारा देश उनके उपयुक्त ही करेगा, इसमें हमें कोई संदेह नहीं है।

वे कहते थे कि हमारा संविधान ही ऐसा है कि हमारे प्रेसीडेंट कई दिनों तक लगातार देश से बाहर नहीं रह सकते। इसलिए बहुत इच्छा होते हुए भी हमारे प्रेसीडेंट आपके या अन्य देशों में जायं, यह कैसे संभव होगा ? हम कहते, जो हो, आज के बदलते हुए वातावरण में जब अमरीका दुनिया की राजनीति में इतना महत्व का हिस्सा ले रहा है, यह संभावना जरूर होनी चाहिए कि आपके प्रेसीडेंट दुनिया के अलग-अलग देशों में जाकर अपनी आंखों से लोगों की हालत देखें और उनके विचार समझें। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए आपका संविधान भी बदला जाना चाहिए।

जब अमरीका के प्रेसिडेंट इसके कुछ ही दिनों बाद भारत में पधारे और यहां की जनता ने उनका इतना शानदार स्वागत किया, जैसा कि इसके पहले कभी नहीं हुआ था, तो हमें खुशी हुई कि जो बात हमने कही थी वह अक्षरश: सही निकली।

अमरीका के लोगों को अपने अमरीकी तरीके के जीवन के प्रति अत्यंत अभिमान है। किसी भी दिशा से उन्हें अपने अस्तित्व के संबंध में खतरे का आभास मिलता है तो वे स्वाभाविक ही भयभीत हो उठते हैं और उसका उग्र विरोध करते हैं। अमरीकी जनता में इसी कारण से हर बात का मूल्यांकन इसी दृष्टि से करने की प्रवृत्ति पाई जाती है कि अमुक घटना या कृत्य साम्यवाद का पोषक है या उसके विरोध में है। वे इसी आधार पर उसका समर्थन या विरोध करते हैं। इस मामले में वे एकदम भावुक हो गये हैं। हम पाते हैं कि आम जन-समूह की विचार-धारा इसी एक खास सांचे में ढल-सी गई है। विचित्र बात तो यह है कि सिद्धान्तों और सरकारों के संगठनों में मौलिक अंतर होने के बावजूद अमरीकी और सोवियत जनता का इस एक जगह—अपनी विचारा-धारा को एक मात्र सत्य मानने के आग्रह में—एक प्रकार का साम्य है।

आज तक की अमरीका के 'स्टेट डिपार्टमेंट' की विदेश नीति के मूल में यही भावना काम कर रही थी। उसका रूप मुख्यत: निषेधात्मक और रक्षात्मक था। इसके अतिरिक्त अमरीका ने, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के प्रति अरुचि के कारण, विदेश-नीति के मामले में सुदक्ष, सक्षम और विशेष योग्यतावाले अधिकारी तैयार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया, जैसाकि ब्रिटेन और सोवियत रूस ने किया है। लगता है, मानो यह अंन्तर्राष्ट्रीय नेतागिरी उनपर, बिल्कुल उनकी इच्छा और स्वभाव के विरुद्ध, लाद दी गई हो।

मैंने उनके महत्वपूर्ण व्यक्तियों से इस संबंध में बात की और पाया कि वे उक्त विश्लेषण और नतीजों से आम तौर पर सहमत हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी नीतियों के संबंध में अन्य देशों में, विशेषत: भारत या अन्य एशियाई देशों में भी, काफी गलतफहमियां फैल गई हैं। इसकी कोई जानकारी स्वयं अमरीकी जनता को पूरी तरह से

नहीं दी गई है कि बाहरी दुनिया के विचार और उसका रुख क्या है। यही कारण है कि आम अमरीकी यह समझ नहीं पाता कि उनकी नीतियों के संबंध में, बाहरी दुनिया में, इतनी गलतफहमी क्यों फैली हुई है ? वे नहीं समझ पाते कि उनके इतने अरबों डालर खर्च करने पर भी जिन देशों में डालर खर्च होते हैं, वहां के लोग भी उनसे खुश क्यों नहीं हैं ?

एक बात हमारी समझ में नहीं आती थी। वह यह कि अमरीका के लोग हमें क्यों नहीं ठीक समझ पाते ? उन्हींकी तरह हमारा देश भी हर तरह की आजादी चाहता है और हम भी व्यक्ति की स्वतंत्रता में पूरा-पूरा विश्वास रखते हैं। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को कायम रखते हुए देश का जल्दी-से-जल्दी विकास करना और लोगों का जीवन-स्तर ऊंचा उठाना, यही हमारा उद्देश्य है। तो फिर हमारे दोनों देशों में एक दूसरे के प्रति गलतफहमी क्यों ? क्यों हम एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते हैं ? क्यों एक दूसरे के लिए मन में अविश्वास और संदेह है ?

गहराई में जाने से पता चला कि कई कारणों के इकट्ठा मिल जाने से ही यह भ्रांत वातावरण पैदा हो गया था। हमारी आजादी की लड़ाई के साथ वहां के लोगों की पूरी-पूरी सहानुभूति थी। वहां की आम जनता के विचार और जीवन-मूल्य इस बात के दृढ़तापूर्वक हामी हैं कि हरेक देश और व्यक्ति को स्वतंत्र होना चाहिए। हम उन्हें इसलिए भी पसंद आते थे कि हमने उन्हींके पद-चिह्नों पर चलकर आजादी पाई। हमने आजादी पाई है, इसकी उन्हें दिल से खुशी हुई। लेकिन उनकी ख्वाहिश रही कि आजादी पाने पर हम उनके गुट में शामिल हो जायं, जैसा कि पाकिस्तान ने किया। जब उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई तब हमारे प्रति उनका रोष बढ़ता गया। हमारी हर बात को वे उल्टा समझते गये।

श्री कृष्ण मेनन के रूखे व्यवहार और बातचीत का भी वहां की जनता पर काफी असर पड़ चुका था। जैसा मैंने पहले भी लिखा है, अमरीका पर बड़ी बातों का उतना असर नहीं पड़ता है, जितना एक मुस्कराहट या मीठे बोल का। कुछ लोगों ने तो मुझसे यहांतक कहा कि श्री मेनन, जान पड़ता है, जानबूझकर एक विशेष प्रकार का रुख अपनाये हुए थे। इसकी वजह से टेलीविजन आदि पर उनको देखने की लोगों की भारी इच्छा रहती

थी। वह खुद अमरीका में बदनाम जरूर हुए, लेकिन हिंदुस्तान के बारे में जानकारी पाने की उत्सुकता लोगों में बढ़ती ही गई। अमरीका की राजधानी में दुनिया के हर देश के राजदूत बसते हैं। कौन किसकी परवा करता है। लेकिन श्री कृष्ण मेनन अपनी ओर सबका ध्यान आकर्षित करने में सफल हुए। जबतक वह वहां रहे, चर्चा का केंद्र बने रहे। कुछ लोगों ने तो यहांतक कहा कि यह उन्होंने जान-बूझकर किया, नहीं तो उनकी ओर भारत की ओर किसीका इतना ध्यान कैसे जाता ?

जब हम लोग वहां पहुंचे उस समय भारत के प्रति अविश्वास और दुर्भावना कम होती जा रही थी। लोगों में भारत के प्रति सहानुभूति बढ़ रही थी। हमारी विदेश-नीति को सही मानों में समझने की कोशिश हो रही थी। अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं ने अमरीका पर यह स्पष्ट कर दिया था कि ऐसे राष्ट्रों का होना, जोकि अन्य बड़े राष्ट्रों के गुट में नहीं हैं, दुनिया में शांति स्थापित करने के लिए तो आवश्यक है ही, साथ-ही-साथ दूर दृष्टि से देखा जाय तो अमरीका के भी हक में साबित होगा। वे जानने लगे हैं कि जिनको वे 'आजाद मुल्क' कहते हैं, और जिनमें वे खुद को भी शामिल समझते हैं, उनकी प्रगति के लिए भी इस तरह के तटस्थ देशों का होना परमावश्यक है। हम लोग अमरीका गये थे तब वहां रिपब्लिकनों का राज्य था। अब तो नए चुनाव हो गये हैं और डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता श्री केनेडी सत्ताधीश हुए हैं। इनके नेतृत्व में अमरीका अधिक प्रगतिशील नीति अंगीकार करेगा, इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है। श्री केनेडी को मैं भारत का परम मित्र मानता हूं और मुझे विश्वास है कि उनके कार्यकाल में हम दोनों देश और अधिक निकट आ सकेंगे।

अमरीका का दृष्टिकोण करीब-करीब वही था जैसा कि एक धनी परिवार का होता है। धनी परिवार अपना आलीशान बंगला बनाकर उसमें रहता है। उसके चारों तरफ गरीबी होते हैं, जो छोटे-छोटे मकानों या झोंपड़ों में रहते हैं। उन्हें भरपेट खाने-पीने को भी नहीं मिलता। ऐसी हालत में वह अपने चारों तरफ बड़ी दीवार बना लेता है। अपनी बचत के लिए दीवारों पर कांच के टुकड़े लगा लेता है, जिससे उसे कोई फांद न सके। बड़ा मजबूत दरवाजा बनायेगा। एक पहरेदार भी होगा, जिसके

शरीर पर भड़कीली वर्दी और हाथ में बन्दूक होगी। वह कभी नहीं चाहता कि उसके आस-पास के लोग दंगा-फसाद या लड़ाई करें। वह भरसक गरीबों की मदद करके उनको खुश रखने की चेष्टा करता है। किसीकी पैसे से मदद करता है तो किसीको किसी और तरह से संतुष्ट करने का प्रयत्न करता रहता है। उसकी इच्छा रहती है कि आस-पास में शांति बनी रहे और उसके प्रति लोगों में सद्भावना बढ़े। लोग उसकी बड़ाई करें, उसे वाहवाही दें। उसकी समझ में यह नहीं आता कि वह तो किसीसे कुछ लेता नहीं, बल्कि देता ही है, फिर लोगों को उससे शिकायत क्यों होनी चाहिए ? उसकी अपेक्षा सिर्फ इतनी रहती है कि जिनकी उसने मदद की है, वे लोग उसको सलाम भर करते रहें।

इसी ढंग से सोचनेवाले कुछ व्यक्ति अमरीका की राजनीति में प्रभाव रखते थे। उनके हाथों में इतनी सत्ता थी कि वहां की सरकार का रवैया भी कुछ-कुछ इसी तरह का हो गया था। वे नहीं समझ पाते थे कि एक ही दुनिया में लोगों के जीवन-स्तर में इतना असीम अंतर टिक नहीं सकता। इस तरह का अन्तर अपने-आपमें भी एक गलत चीज है, जिसको आज के युग में टिकाये रखना असंभव है। अन्य देशों के लोगों की, खास करके ऐसे लोगों की, जो अभी-अभी आजाद हुए हैं, या आजादी के लिए लड़ रहे हैं, कुछ विशेष भावनाएं, और मानसिक स्थिति भी होती है, जिसका ख्याल रखना पड़ता है। सिर्फ बुद्धिवाद से काम नहीं चल सकता। हम लोग अभी-अभी बड़ी मुश्किलों से, अंग्रेजों से लड़कर, आजाद हुए हैं। सैकड़ों सालों की गुलामी से मुक्ति पाकर हमारी जनता इस बात के प्रति अत्यंत आशंकित और सतर्क रहती है कि हम फिर किसी आर्थिक या राजनैतिक गुलामी में न फंस जायं। यह मूलभूत बात अमरीका के लोगों की समझ में नहीं आती थी। इसीलिए हम लोग एक-दूसरे की भाषा को भी नहीं समझ पाते थे और गलतफहमी बढ़ने से एक दूसरे से दूर होते जा रहे थे; नहीं तो अमरीका जैसा धनवान देश भला यह क्यों चाहेगा कि भारत सरीखा बड़ा देश उससे दूर खिंचता चला जाय। उनकी समझ थी कि जो उनके साथ नहीं हैं, वे सब उनके दुश्मन के साथ हैं। इसीसे उनको लगता रहा कि हम भी शायद चीन के रास्ते पर ही जानेवाले हैं।

फिर हमसे दोस्ती बढ़ाने में क्या फायदा ? लेकिन धीरे-धीरे अब उनकी समझ में बातें आ रही हैं। इसीकी वजह से प्रेसीडेंट आइजनहोवर को इतने लंबे दौरे के लिए अपने देश से बाहर निकलना पड़ा और उन्होंने अपना अधिक-से-अधिक समय भारत में गुजारा। इसमें कोई शक नहीं कि उनकी इस यात्रा का बहुत गहरा असर भारत और अमरीका के लोगों को नजदीक लाने में हुआ है। इस दृष्टि से प्रेसिडेंट आइजनहोवर की यह यात्रा बड़ी सफल ही नहीं रही, बल्कि बड़ी सामयिक और ऐतिहासिक साबित हुई है, इसमें कोई शक नहीं।

इस सिलसिले में मुझे दिल्ली-विश्वविद्यालय के छात्रों के सामने दिये गए उस भाषण की विशेष याद आ रही है, जिसमें प्रेसिडेंट आइजनहोवर ने कहा था कि दोनों देशों के विश्वविद्यालयों को चाहिए कि उनके द्वारा बहुत बड़ी संख्या में दोनों देशों के बीच युवकों का आना-जाना हो। सैकड़ों बरसों तक अलग-अलग देश के नवयुवकों को दूसरे देशों में फौज और हथियार लेकर, एक-दूसरे को जीतने के लिए भेजा जाता रहा। अब समय आ गया है जब हम लोग अपने नौजवानों की तरफ देखते हैं और चाहते हैं कि वे शांति और समाधान का पैगाम लेकर एक दूसरे के देश में जायं, एक दूसरे को समझें और अंतर्राष्ट्रीय झगड़ों को शांति से निबटाने में कारगर साबित हों। यह बात मुझे बहुत उचित प्रतीत हुई। अपने अमरीका के दौरे के बाद मुझे भी ऐसा लगा था कि सरकारी प्रतिनिधि-मंडलों के आने-जाने के अलावा इस बात की बड़ी जरूरत है कि गैर-सरकारी तौर पर समाज के अलग-अलग क्षेत्रों से बड़ी संख्या में लोग यहां से अमरीका जायं और इसी तरह से वहाँ के साथियों को यहां बुलायें। आपस में अच्छा संबंध बनाने के लिए गैर-सरकारी लोग अधिक आसानी से काम कर सकते हैं। मैं तो मानता हूं कि युवक तो खूब जायं ही, साथ ही हमारे यहां के सामाजिक, शैक्षणिक, व्यापारिक तथा खेल-कूद के क्षेत्रों में भी यह आदान-प्रदान बड़े पैमाने पर हो।

मुझे पूरा भरोसा है कि अमरीका की सरकार और अमरीका के लोग लड़ाई बिल्कुल नापसंद करते हैं और उसे वे कभी नहीं चाहेंगे। वहां के लोग धनवान हैं, धन दे सकते हैं, पर अपने ज़वान बेटों को मरते नहीं

देख सकते। हां, दूर कहीं लड़ाई हो और वहां के लोग मरने को तैयार हों तो वे पैसे से जरूर भरपूर मदद कर सकते हैं। खुद लड़कर मरना वे क्यों चाहेंगे ? उनको तो यही चाहिए कि अमरीका की जीवन-वृत्ति और जीने का तरीका बढ़े। व्यक्तिगत स्वतंत्रता और काम करने की पूरी आजादी के वे बड़े हामी हैं। वे तो केवल इस बात से डरते हैं कि कहीं उनकी यह आजादी छिन न जाय।

यदि उनको यह भरोसा हो जाय कि अमरीका के खिलाफ साम्यवादी कभी हमला नहीं करेंगे, उनके जीवन में उथल-पुथल मचाने की कोशिश नहीं करेंगे तो वे शायद सारी दुनिया की राजनीति से दूर हटकर अपने ही देश में आराम से बैठ जायं। उनको किसी देश से न तो कच्चा माल चाहिए और न सस्ती मजदूरी पर गुलाम ही। उनके पास पैसे भरपूर हैं। वे हर चीज की पूरी-पूरी कीमत चुकाने को तैयार हैं। वे किसी देश को आर्थिक गुलामी में रखकर उसे चूसकर अपने देश को धनवान बनाना नहीं चाहते। इसके विपरीत वे तो हर देश को आर्थिक सहायता देते हैं।

रूस और अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद अपना साम्राज्य फैलाना चाहते हैं, इसी मान्यता की वजह से वे यह जरूर चाहते हैं कि सैनिक दृष्टि से दूसरे लोग उनके आधिपत्य में आ जायं और जब कभी अंतर्राष्ट्रीय युद्ध छिड़ जाय तो उनको हार न खानी पड़े। आज अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद जिन देशों में है, वहीं तक रहे और उन लोगों में अपना क्षेत्र बढ़ाने की वृत्ति न रहे तो मैं समझता हूं कि बड़ी आसानी से अंतर्राष्ट्रीय समझौता हो सकता है। दुनिया में शांति कायम होने में पूरी मदद मिल सकती है। अंतर्राष्ट्रीय साम्यवाद के पास अब बहुत क्षेत्र आ गया है। उसके दायरे के नीचे बड़ा क्षेत्रफल और बड़ी जन-संख्या है। इतना मिल जाने पर अब भी उसकी भूख मिट जाय तो दुनिया का भविष्य सुधर सकता है। आज जो सारे लोग रोजमर्रा का जीवन डर-डरकर बिताते हैं, उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी। जो पैसा लड़ाई के औजारों में लगता है, एटम बम बनाने में लगता है, वही पैसा शान्ति, सुख, चैन और आराम की जिंदगी बिताने में व्यय किया जा सकता है। पर यह संभव कैसे हो, यह

बड़ा विकट प्रश्न है। जिसके पास है उसे और चाहिये। जिसके पास ज्यादा है, उसे और ज्यादा चाहिए। इसीलिए यह पागलपन और मूर्खता-भरी दौड़ और स्पर्धा रुक नहीं पाती, अन्यथा साम्यवादी संसार के लोग भी शांति तो चाहते ही हैं। तभी वहां के लोगों को भी अच्छा खाना, अच्छा पहनना, अच्छे घर और चैन से रहना नसीब होगा। शांति तो सब चाहते हैं, पर अपनी-अपनी शर्तों पर। इसलिए आवश्यकता है और ज़माने की मांग है कि तटस्थ देशों की संख्या बढ़े, जो सबसे मैत्रीपूर्ण संबंध कायम रख सकें और आपस में सद्भावना का फैलाव कर सकें।

: ५ :

अमरीका की राजनीति और भारत—२

अमरीका जाने से पहले हम यह मानते थे कि चूंकि अमरीका का सारी दुनिया पर इतना असर है, वहां के लोग और अखबार भी देश-विदेश के मामलों में पूरी दिलचस्पी लेते होंगे और वहां की घटनाओं से पूरी तरह परिचित होंगे। लेकिन वहां पहुंचने पर हमने देखा कि 'न्यूयार्क टाइम्स', 'शिकागो ट्रिब्यून' और इस तरह के एक-दो अखबारों को छोड़कर, अन्य अखबारों में अंतर्राष्ट्रीय खबरें नहीं के बराबर छपती हैं। यद्यपि प्रांतों के दैनिक अखबारों में भी ६०-७०-८० से लेकर १००-१२५ तक के पृष्ठ होते हैं, फिर भी उनमें विदेशी खबरें बहुत कम आती हैं। करीब ७० से ८० प्रतिशत जगह तो विज्ञापनों में ही चली जाती है। बाकी की जगह में बहुत-सी जगह सनसनीपूर्ण खबरों से भरी होती है। बची-खुची जगह देश व प्रांत के राजनैतिक समाचारों में खर्च हो जाती है। हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि हमारी प्रान्तीय पत्रिकाएं, जोकि प्राय: सिर्फ आठ दस पृष्ठों की होती हैं और जिनके संचालकों के पास ताकत और पैसा भी कम होता है, उनमें भी, विदेशी खबरें ज्यादा परिमाण में होती हैं। जब इस बात की गहराई में उतरे तब यह देखने में आया कि वहां की आम जनता विदेशों की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं लेती। उन सबकी आम सद्भावना आजादी के लिए लड़नेवालों के प्रति है। वे अपने रोजमर्रा के जीवन में इतने व्यस्त हैं और अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठाने में ऐसे लगे हुए हैं कि उनका और किसी तरफ ध्यान ही नहीं जाता। उनका जीवन इतनी तेज़ रफ्तार से चलता है और हर क्षेत्र में इतनी अधिक स्पर्धा है कि वे राजनैतिक मसलों की ओर ज़रा भी दिलचस्पी नहीं रखते। भौतिक साधना और शारीरिक आराम की इतनी ख्वाहिश है कि वे इसी उलझन में दिन-रात फंसे रहते हैं।

इन सब बातों का असर उनके देश की राजनीति और अंतर्राष्ट्रीय नीति पर भी पड़ना स्वाभाविक ही है। श्री डलेस की नीति इन्हीं सिद्धांतों को लेकर बनी हुई थी। अमरीकी लोगों की आम भावना का प्रतिबिंब ही उनकी विदेश-नीति में झलकता था। उन्होंने प्रगतिशील होकर अपने देश की जनता को आगे ले जाने की कोशिश नहीं की। इसीका परिणाम है कि उनकी इतनी मदद होते हुए भी पिछड़े हुए देशों में उनकी जितनी इज़्जत होनी चाहिए उतनी नहीं हुई। जब हम लोग रूस में थे तो हमें श्री ख्रुश्चेव से मिलने का मौका मिला था। उन्होंने यहांतक कहा कि उनके सबसे बड़े मित्र तो श्री डलेस हैं, क्योंकि उनकी नीति के कारण ही अमरीका के प्रति लोगों की नाराजगी बढ़ती जा रही है। स्वाभाविक रूप से यह बात रूस के पक्ष में जाती है। श्री डलेस वैसे बहुत ही सज्जन और धर्मभीरु व्यक्ति थे। अमरीका के पुराने नामी घरानों के लोग उनको बहुत चाहते थे और उनकी कार्यदक्षता, मेहनत, सज्जनता और ईमानदारी पर फिदा थे। हम जब अमरीका में थे तब श्री डलेस बहुत बीमार थे और अच्छे-अच्छे घरानों के पुरुष और स्त्रियां उनकी तबीयत के बारे में बहुत चिंतित थे और बराबर ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। मैं मानता हूं कि प्रेसीडेंट आइजनहोवर दुनिया के दौरे पर निकले और उन्होंने श्री ख्रुश्चेव को अमरीका आने का निमंत्रण दिया यह सब विश्व-शांति की ओर उठाये गए कदम हैं और ये श्री डलेस के होते हुए संभव नहीं थे।

अमरीका जाने से पहले हमें अपने प्रधान-मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू से मिलने का मौका मिला था। मैंने उन्हें हमारे प्रतिनिधि-मंडल के अमरीका जाने के कारणों से परिचित कराया था और उनका सदेश मांगा। उन्होंने संक्षेप में कहा था—"इस बारे में मेरे विचार आप लोग जानते ही हैं। हम लोग अपने तरीके से आगे बढ़ रहे हैं। हम किसीके खिलाफ नहीं हैं। हम जो सही समझते हैं, करते हैं। शीतयुद्ध से कोई लाभ नहीं हो सकता। लोगों के मत भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। उनको बहस या लड़ाई से सुलझाया नहीं जा सकता। हरेक को शांति और एकता के साथ रहना होगा। इसलिए पंचशील पर हमारा भरोसा है। पंचशील हमारे लिए कोई नई बात नहीं है। यह कहना ठीक नहीं है कि हम पंच-

शील पर इसलिए भरोसा रखते हैं कि हम बड़े-बड़े देशों की ताकतों से डरते हैं और इसीलिए हमने तटस्था का स्वांग रचा है। पंचशील में हमारा हमेशा भरोसा रहा है। वह तो हमारी सस्कृति और परंपरा का हिस्सा हो गया है। यदि हम इसपर भरोसा न करे तो फिर दूसरा रास्ता तो सिर्फ लड़ाई और संपूर्ण विनाश का ही रह जाता है।

"हम लोगों को किसी दूसरे देश में किसी तरह से भी दखल देने की इच्छा नहीं है। हमारी खुद की ही बहुत समस्याएं हैं, जिन्हें हमें हल करना है। यदि दुनिया में शांति रखने के लिए हमारी सेवाओं की आवश्यकता हो तो हम जरूर शक्ति के मुताबिक हिस्सा लेने को तैयार हैं।

"लोग कहते हैं कि हमारी दूसरी पंचवर्षीय योजना जरूरत से ज्यादा बड़ी है। लेकिन हमारी जनसंख्या बढ़ती जाती है। इस दौड़ में बढ़ती हुई जन-संख्या को पकड़कर उसके आगे बढ़ने की कोशिश में हैं। हमको बहुत मेहनत करके उसे पकड़ना होगा। अपना जीवन-स्तर ऊंचा उठाना होगा। इसलिए हम अपनी योजना को कम करना नहीं चाहते।"

जब हमने अमरीकी मित्रों को अपने देश की यह विचार-धारा समझाने की कोशिश की तब पता चला कि पाकिस्तान का विरोधी प्रचार और उनके अपने अखबारों की उदासीनता के कारण अनेक लोगों को इस नीति के औचित्य का कतई ज्ञान नहीं था। हम देख रहे हैं कि धीरे-धीरे अब अमरीका की वैदेशिक नीति में बड़ा अंतर आ रहा है।

इसका कारण क्या है? मैं मानता हूं कि इसके दो मुख्य कारण हैं। सबसे बड़ा तो रूस का सफलतापूर्वक स्पुतनिक चलाना, जो उसकी तकनीकी शक्ति को प्रकट करता है। इसके पहले अमरीका के लोग यही मानते आ रहे थे कि विज्ञान और टैक्नोलोजी आदि में उनकी ताकत को कोई छू नहीं सकता। इसलिए वे किसीसे क्यों दबें और समझौता करें? जैसा वे चाहेंगे, उसी तरह दुनिया को कबूल कर लेना चाहिए। और मूलत: वे दुनिया के लिए भलाई ही चाहते थे, इसलिए भी उनको लगता था कि दुनिया उनकी बात को आसानी से मान लेगी।

जब रूस ने स्पुतनिक चलाया तो अमरीका के लोगों को केवल आश्चर्य ही नहीं हुआ, बल्कि उनको एक तरह का बड़ा धक्का भी लगा।

जिससे संभलने में उन्हें बड़ी देर लगी। वे धीरे-धीरे समझ गये कि चाहे उनका जीवन का तरीका कितना ही बेहतर क्यों न हो, उन्हें रूस से समझौता करना आवश्यक है। साम्यवादी तरीकों में भी जरूर कुछ अच्छाइयां होनी चाहिए, नहीं तो उनको परास्त कर सके, इतना विकास वे कैसे कर सके? इसलिए हर क्षेत्र में क्रमशः समझौते का वातावरण पैदा हुआ। उसीके फलस्वरूप श्री खुश्चेव को अमरीका जाने का आमंत्रण मिला और उनका वहां अच्छा स्वागत हुआ। स्पुतनिक के आविष्कार के पहले अमरीका में रूस के नेता को सम्मान देने के बारे में कोई सोच भी सकता था, इसमें मुझे पूरा संदेह है। जिस देश में साम्यवाद और साम्यवादी नेताओं को सबसे बड़ा दुश्मन माना जाता है, उनका स्वागत वहां के लोग कैसे और क्यों करें? लेकिन जब उन्होंने देखा कि दुश्मन के पास बड़ी ताकत है तो उन्होंने सोचा कि उनमें आपस में कितना ही भेद क्यों न हो, बेहतर यही है कि समझौते से रहा जाय। मैं मानता हूं कि यही सही तरीका भी है। जब हमें पता चल जाता है कि हम अपने विरोधी को नहीं हरा सकते या अपनी बात पर राजी नहीं कर सकते, तो लड़ाई—शीत या गरम—चालू रखने से कोई लाभ नहीं। क्रिकेट के खेल में भी यही होता है। जब हमें पता चल जाता है कि जीत हमारे लिए असंभव है, तो फिर मैच किसी भी तरह बराबरी में छूट जाय, इसकी कोशिश चलती है।

दूसरा कारण है एशिया और अफ्रीका में नये वातावरण का निर्माण। इन देशों में एक तीसरा समुदाय पैदा हो गया, जिसने दुनिया के दोनों शक्तिशाली गुटों से अलग रहने का तय कर लिया है। इस दूसरी परिस्थिति के निर्माण में हमारे प्रधानमंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है।

अमरीका में स्थित भारतीय लोगों में और भारत के साथ सहानुभूति रखनेवाले अमरीकी दोस्तों में एक बात पर वाद-विवाद चलता था। अमरीका की राजधानी वाशिंगटन में, जहां उनकी पार्लामेंट आदि हुआ करती है, पाकिस्तान की बड़ी तगड़ी लॉबी है। पाकिस्तान के लोग रात-दिन भारत के विरुद्ध जहर उगला करते हैं और समय-असमय अपने देश के पक्ष की बात कहते रहते हैं। कुछ लोगों का कहना था कि हमें भी

वही रास्ता अख्तियार करना चाहिए और पाकिस्तान की बातों का लगातार और बड़े जोरों से खंडन करना चाहिए और अपनी बात बराबर रखते जाना चाहिए। इससे शायद तुरंत में छोटे-मोटे फायदे भी मिल सकते हैं। लेकिन समझदार लोगों की राय यह थी कि हमें तो एक पुराने और सभ्य, सुसंस्कृत देश की भांति बड़ा सौम्य और समझदारी का तरीका अख्तियार करना चाहिए! हमें अपनी बात स्पष्टता, सज्जनता और मिठास से कहनी चाहिए। उसको 'सस्तेपन' से दुहराने की आवश्यकता नहीं। मुझे खुशी है कि हमारे देश ने काफी विरोध होते हुए भी पहले रास्ते को छोड़कर दूसरा रास्ता ही अख्तियार किया है। उसका नतीजा यद्यपि धीरे-धीरे निकल रहा है, लेकिन यह भी मानना होगा कि इसीके फलस्वरूप आज हमारे दोनों देश इतने करीब आ गये हैं। मेरी यह मान्यता है कि भारत व अमरीका दोनों देश साथ मिलकर दुनिया में शांति की स्थापना में बड़ा हिस्सा बटायेंगे।

हमने जो कुछ भी देखा-सुना उसके आधार पर कह सकते हैं कि एक सामान्य अमरीकी का रुख बड़ा मित्रतापूर्ण है और वे हमारी सहायता के लिए तत्पर हैं। हमें यह बताया गया कि करीब एक वर्ष से भारत के पक्ष में अमरीकी जनता के रुख में बड़ा परिवर्तन आया है। आइजनहोवर की सरकार भी भारत को, उसकी विदेश-नीति के बावजूद, आर्थिक सहायता देने की अहमियत महसूस करने लग गई थी। वस्तुतः अनेक व्यक्ति, जिनमें बहुत ऊंची स्थिति के लोग भी हैं, यह अनुभव करने लगे हैं कि भारत ने तटस्थ रहने की जो नीति अपनाई है, वह बिल्कुल सही और उचित है। हां, अनेक क्षेत्रों में यह भावना भी पाई जाती है कि हम साम्यवादी देशों के प्रति उदार हैं। अनेक लोग शीत-युद्ध और हथियारों के संकलन की समस्याओं के कारण बहुत चिन्तित हैं। इसीसे भारत के प्रति उदासीन हैं।

किंतु फिर भी यह कहना गलत होगा कि आम अमरीकी जनसमुदाय भारत को पूर्णतः समझ गया है या उसको हमारी समस्याओं की पूरी जानकारी हो गई है। अमरीकी जनता को विदेशी नीतियों के संबंध में बहुत सीमित ज्ञान है। भारत और एशिया-अफ्रीका के अन्य देशों के संबंध में, अमरीका में एक अंतरंग ज्ञान का अभाव, काफी बड़े पैमाने पर फैला

हुआ है। इसका यह कारण हमें बताया गया कि दूसरे विश्वयुद्ध के पूर्व अमरीका की नीति बिल्कुल अलग-थलग रहने की थी। बाहरी दुनिया से उसके संबंध बिल्कुल सीमित थे। अनेक अमरीकियों ने तो एशिया और अफ्रीका के कई देशों के नाम ही, जब वे सन् १९४६ के बाद स्वतंत्र हुए, तब पहली बार सुने थे। इसके अतिरिक्त उनके शिक्षणक्रम में भी इन देशों के इतिहास और भूगोल को बहुत कम स्थान था।

भारत के बारे में ज्यादा गलतफहमी तो अमरीका के वे अखबार फैलाते हैं, जिनमें भारत-संबंधी समाचार, गलत ढंग पर, या कभी जान-बूझकर भी, तोड़-मरोड़कर छापे जाते हैं। विशेषत: ये अखबार वे होते हैं, जो अपने-अपने राज्यों तक ही सीमित हैं। पहले तो भारत के बारे में बहुत कम समाचार होते हैं, और जो कुछ भी होते हैं, तोड़े-मरोड़े हुए। इस तरह का एक उदाहरण है, श्री नेहरू के उस बयान से संबंधित, जो उन्होंने लोक-सभा में तिब्बती शरणार्थियों के संबंध में दिया था। बड़े-बड़े अक्षरों में एक प्रांतीय अखबार में यह शीर्षक दिया गया था: 'नेहरू की तिब्बतियों पर बंदिश'। फिर नीचे अवश्य नेहरू जी की तिब्बती शरणार्थियों के प्रति प्रकट की गई सहानुभूति का भी जिक्र था। शीर्षक प्रधान-मंत्री के इस कथन से संबंधित था कि भारत बेशुमार तिब्बतियों को अपने देश में बसाने के लिए लेने में समर्थ नहीं होगा। लोगों को पूरी खबरें पढ़ने की तो फुर्सत ही कहां है। इसलिए इस तरह के गलत शीर्षक पढ़कर वे अपनी राय भी गलत बना लेते हैं।

हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि 'न्यूयार्क टाइम्स' की तरह का अखबार भी महात्मा गांधी को भारत के एक धार्मिक नेता के रूप में संबोधित करता था, जबकि सब जानते हैं कि गांधीजी पूरे देश में एक महापुरुष के रूप में सम्मानित हैं। नेहरूजी की भी आम अमरीकी के दिल में बड़ी इज्जत है, यद्यपि अनेक क्षेत्रों में उनकी विदेश-नीति का विरोध है।

वाशिंगटन में अमरीका के स्टेट डिपार्टमेंट के अधिकारियों से भी हमारी बाकायदा मुलाकात हुई। उन लोगों ने भी हमें बताया कि हिन्दुस्तान के पक्ष में अमरीकी जनता का रुख इन पिछले कुछ महीनों से काफी बदल गया है। अब वे हमारी आकांक्षाओं के प्रति कहीं अधिक सहानुभूतिपूर्ण हो

गये हैं। हिंदुस्तान की पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता के लिए अमरीकी सरकार काफी सहायता देने का इरादा रखती है। जब हमने पूछा कि अमरीकी सरकार यह सहायता राष्ट्रसंघ के माध्यम से क्यों नहीं देती, तब हमें उन लोगों ने बताया कि इस प्रकार सहायता देने के पक्ष में अमरीकी जनता की राय कुछ बहुत अनुकूल नहीं है।

बात-बात में हमारे एक यूरोपियन मित्र ने, जो अब अमरीका में बसकर वहां के निवासी हो गये थे, अमरीकी लोगों के बारे में अपने कुछ रोचक अनुभव बताये। चूंकि मूलत: वह भी एक विदेशी थे, इसलिए उनके ध्यान में इन बातों का आना ज्यादा स्वाभाविक था। उनके ख्याल से अमरीका तो एक बच्चा देश है। जैसे बच्चा किसी तरह की आलोचना नहीं सहन कर सकता और झट मचल जाता है, उसी तरह इनका भी हाल है। यदि हम किसी बच्चे के खिलौने की आलोचना करते हैं तो वह चिढ़ जाता है न ? इसी तरह इनके बारे में हम कोई विरोध की बात करें तो इन्हें सहन नहीं होती।

इन मित्र की राय में अमरीका में सरकारी नौकरी में सिर्फ वे ही लोग जाते हैं, जिनमें खुद किसी काम की पहल करने का माद्दा नहीं होता। वहां सरकारी नौकरों की बहुत इज्जत नहीं है। जिसको जरा भी मौका मिलता है, वह सरकारी नौकरी छोड़कर निजी धंधा करने लगता है।

इस संदर्भ में मैं यह भी कह दूं कि अमरीकी व्यापारी अपनी निजी पूंजी भारत में लगायें, इसके पक्ष में भी वातावरण अब अधिक अनुकूल होता जा रहा है। पूंजी लगाने के संबंध में मैं जिन भी उद्योगपतियों, बैंकरों और व्यवसाय में धन लगानेवालों से मिला, उन सबने गहरी दिलचस्पी दिखाई। वे समझने लगे हैं कि भारत में उनकी पूंजी सुरक्षित है और उससे पर्याप्त लाभ भी है। राजनैतिक दृष्टि से भी यहां का औद्योगीकरण हो, हमें लाभ पहुंच सके और हमारा जीवन-स्तर ऊंचा हो, यह भी उनके दिल में है। आवश्यकता अब इस बात की है कि इस अनुकूल वातावरण का ठीक उपयोग कर लेने के लिए उचित कदम उठाये जायं।

: ६ :

शिक्षण-संस्थाएं

अमरीका की उच्च शिक्षा की सबसे बड़ी संस्था न्यूयार्क स्थित 'सिटी-कालेज' को देखने का अवसर हमें मिला। इसमें तीस हजार विद्यार्थी हैं और इसका खर्च न्यूयार्क प्रांत की सरकार की ओर से चलता है। चूंकि सारा खर्च वे करते हैं, इसलिए प्रवेश आम तौर पर उन्हींके प्रांत के विद्यार्थियों को पहले मिलता है। यहांपर हमारे मेज़बान थे भारत के एक बड़े दोस्त डा० बेल गैलेगर, जो इस संस्था के अध्यक्ष हैं। उनसे मिलकर हमें बड़ा हर्ष हुआ। यह बड़े मिलनसार, सज्जन और विद्वान हैं। बाद में जाकर तो इनके कुटुंब से हमारा और भी निकट का परिचय हो गया। इनकी लड़की बारबरा का विवाह डा० टाम जुनूजी से कुछ ही रोज पूर्व हुआ था। टाम वहां के युवक-आंदोलन में हिस्सा ले रहे थे और जब हम दौरे पर रवाना हुए तो 'याक' ने टाम को ही हमारी देखरेख के लिए हमारे साथ भेजने का तय किया। टाम से तो हमारी अच्छी-खासी दोस्ती हो ही गई थी, पर साथ ही बारबरा से भी हो गई। दोनों ही पति-पत्नी बहुत ही मिलनसार और मीठे स्वभाव के हैं। खुशी की बात है कि हमारे लौटने के कुछ दिनों बाद दोनों ही 'वर्ल्ड असेम्बली आव यूथ' की तरफ से चलनेवाले हमारे अंतर्राष्ट्रीय युवक-शिक्षण-केंद्र—आलोक—में जो कि भारत के मैसूर राज्य में स्थित है, शिक्षक की हैसियत से काम करते रहे। फिलहाल दोनों ही सारे भारतवर्ष में घूम-घूमकर हमारे देश की सामाजिक व युवक-संस्थाओं के कार्यकर्ताओं की आवश्यकताएं और उन्हें सही नेता बनने का शिक्षण किस तरह से मिल सके, इसका निरीक्षण कर रहे हैं।

इतनी बड़ी शिक्षण-संस्था देखने का हमारा यह पहला अवसर था। बहुत बड़ा अहाता, अनेक बड़े-बड़े मकान, खेल-कूद के मैदान, बड़ी भारी व्यवस्था आदि देखकर हम सभी लोग प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

लास एंजलेस में, कैलिफोर्निया यूनिवर्सिटी के अहाते में हमने विद्यार्थियों की लेजिस्लेटिव कौंसिल की एक बैठक की कार्यवाही देखी। यहां विद्यार्थी-सरकार ने चाय-पान के साथ हमारा स्वागत भी किया। हममें से कुछ सदस्य लास 'एंजलेस यूथ फार काइस्ट' की एक रेली में भी उपस्थित थे। यहींपर, अमरीकन फ्रेंड्स सोसाइटी के कालेज सेक्रेटरी श्री मैनले जान्सन ने हमारे प्रतिनिधि-मंडल के सम्मान में एक भोज का आयोजन किया।

सेन्फ्रैंसिसको में कैलीफोर्निया यूनीवर्सिटी के चांसलर श्री सीबोर्ग से भी मिलने का हमें मौका मिला। उनके बर्कली के इस केंद्र में करीब बीस हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं और पन्द्रहसौ प्राध्यापक हैं। वैसे इनके कालिज सारे कैलीफोर्निया में जगह-जगह बिखरे हुए हैं और कुल मिलाकर इनकी यूनीवर्सिटी में तेतालीस हजार विद्यार्थी पढ़ते हैं। इनकी संख्या, उम्मीद है कि १९७० में एक लाख तक हो जायगी। यहां बड़ी मुश्किल से प्रवेश मिलता है। सिर्फ अच्छे नंबर पाये हुए ऊपर से १२ प्रतिशत लड़कों को ही इसमें भरती होने का मौका मिलता है। यहां शिक्षण मुफ्त में दिया जाता है। फिर भी रोजमर्रा की अन्य बातों में विद्यार्थियों का करीब १२० डालर प्रति वर्ष खर्च हो जाता है। दूसरे प्रांतों से पढ़ने के लिए आये हुए विद्यार्थियों का ४०० डालर प्रति वर्ष खर्च होता है। फिर भी यहां की पढ़ाई सारे देश में सबसे सस्ती है। यहां के खानगी कालिज तो १००० डालर प्रति वर्ष तक फीस के रूप में ले लेते हैं। यह शिक्षण-संस्था देश के सबसे अच्छे और बड़े शिक्षा-केंद्रों में से एक है। यहां करीब विदेशों के एक हजार विद्यार्थी पढ़ते थे।

यहां की विद्यार्थियों की सरकार सारे देश में सबसे मजबूत है। विद्यार्थियों की सरकार की मार्फत करीब तीस लाख डालर हर वर्ष खर्च होता है। खेल-खूद, फुटबाल स्टेडियम, स्टोर, रेस्तरां आदि विद्यार्थी खुद चलाते हैं और उन सबसे होनेवाली कमाई उनको ही मिलती है। विद्यार्थी-यूनियनों के कार्य के लिए हर विद्यार्थी को सालाना १२ डालर देना पड़ता है। खेल-कूद में हिस्सा लेना चाहे तो १० डालर और देना पड़ता है। पर यह उसकी मर्जी पर निर्भर रहता है। जब हम वहां गये थे तब विद्यार्थी

यूनियन का अपना नया भवन १ करोड़ २० लाख डालर की लागत से बनाया जा रहा था। इनको कुछ प्रांतीय सरकार से और कुछ युनिवर्सिटी के कोष में से भी सहायता मिल जाती है।

बर्कली विश्वविद्यालय में हमने वहां का सहकारी स्टोर भी देखा। इस स्टोर के उपभोक्ता ही इसके मालिक हैं। बाईस हजार कुटुंब इस स्टोर के सदस्य हैं। हर कुटुंब का एक वोट है। हरेक को पांच डालर का शेयर खरीदना पड़ता है। स्टोर में हर तरह के खाद्य-पदार्थ, मांस, दूध, मक्खन, घर में लगनेवाली अन्य वस्तुएं, पेट्रोल आदि सब चीजें मिलती हैं। इनकी करीब तीस लाख डालर की कमाई है और तीस लाख डालर के करीब ही खर्च भी। यहां चीज सस्ती मिलती है और प्रत्येक शेयर पर ४ प्रतिशत लाभांश भी मिल जाता है। हर तरह के बीमे का काम भी यहां करते हैं। बीमारी आदि में डाक्टरी व्यवस्था, रहने के लिए नया घर ढूंढ़ना आदि कार्यों में भी अपने सदस्यों की यह मदद करता है।

सेन्फ्रैंसिसको में और भी अनेक समारोह हमारे प्रतिनिधि-मंडल के सम्मान में हुए। भारत, पाकिस्तान, लंका के विद्यार्थियों की ओर से इंटर-नेशनल हाउस में एक दिन दोपहर के खाने का आयोजन भी किया गया। इनमें पाकिस्तान, भारत, लंका प्रोजेक्ट के सलाहकार डा० पार्क भी उपस्थित थे। एक पूरा दिन हमने वाइ० एम० सी० ए० की विभिन्न शाखाओं के सदस्यों से बातचीत करने में बिताया और विशेषतः किशोरों से संबंधित उनके कार्यक्रमों के संबंध में बातचीत की। ये कार्यक्रम 'वाइ' क्लब द्वारा अयोजित किये जाते हैं। 'वाइ' क्लब के सदस्यों की उम्र बारह-तेरह वर्ष से सतरह-अठारह तक होती है। इनमें से कुछ क्लब सिर्फ लड़कों के लिए, कुछ सिर्फ लड़कियों के लिए और बहुत-से दोनों के लिए भी होते हैं। वाई० एम० सी० ए० की पेनिन्सुला शाखा में सबसे अधिक 'वाई' क्लब हैं। इसमें करीब एक दर्जन किशोर सदस्य होते हैं। किसी सदस्य के घर या अन्य पूर्व-निश्चित स्थान पर एकत्रित होकर ये लोग अपनी समस्याओं के संबंध में बातचीत करते हैं। वे अपने खेल-कूद प्रतियोगिताओं आदि का आयोजन भी किया करते हैं। अपनी पसंदगी की छोटी-मोटी सेवा करने का कार्यक्रम भी बनाते हैं। इनमें से एक क्लब में जब हम पहुंचे तो करीब बीस

लड़कियां, जिनकी उम्र पन्द्रह से बीस वर्ष के अंदर थी, इकट्ठी थीं। उनसे जब हमने पूछा कि भारत के बारे में तुम लोग क्या जानती हो, तब अलग-अलग लड़कियों ने निम्न बातें बताई--

१. वहां मक्खियां बहुत हैं, लेकिन ताजमहल बहुत ही सुंदर है।
२. हिंदुस्तान में ऊंट बहुत होते हैं।
३. वहां के मंदिर मुझे बहुत पसंद हैं।
४. भारत रहने के लिए बहुत सुदर जगह है। मैं वहां जाकर रहना चाहती हूं। वहां वृक्ष बहुत हैं। मेरे पिता ने भारत के कई सुंदर चित्र खींचे हैं।
५. भारत में हर चीज़ को पवित्र गंगा नदी में समर्पित कर देते हैं--- बच्चे आदि सबकुछ।
६. शहरों में भीड़ लगी रहती है।
७. वहां असंख्य लोगों का समुदाय बसता है, गरमी बहुत है।
८. सपेरे बहुत रहते हैं।
९. हमको भारत की फिल्मों से पता चलता है कि वहां के पहनावे और कपड़े बहुत रंगीन और सुंदर होते हैं। मंदिर बड़े आकर्षक हैं।
१०. मुझे तो धर्म में बड़ा रस है। मुझे वहां के प्रति बड़ा आकर्षण है।
११. हिंदुस्तानियों की बहुत सारी पत्नियां होती हैं।

बच्चों के इस तरह के जवाबों से हम लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ। उन लोगों को भारत व अन्य एशिया तथा अफ्रीका के देशों के बारे में बहुत कम जानकारी थी, क्योंकि उनके स्कूलों में हमारे देश के बारे में कुछ सिखाया नहीं जाता। इसलिए यदि उन्हें यहां के बारे में जानकारी न हो या गलत जानकारी हो तो उसमें क्या आश्चर्य है ? आवश्यकता यह है कि इन अस्पष्ट और विचित्र धारणाओं के स्थान पर अपने देश का सही नक्शा प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जाय।

नेब्रास्का प्रांत के लिंकन शहर में वहां के कृषि-कालेज के अधिकारी ने हमको बताया कि उस क्षेत्र में एक किसान करीब-करीब तीन हजार एकड़ की जुताई कर सकता है। उस प्रदेश के लोग अधिकतर कंजरवेटिव (पुरा-

तनवादी) हैं। समुद्र के किनारे रहनेवाले लोग अधिक उदार मत के हैं, क्योंकि विदेशियों से मिलने का अवसर उन्हें अधिक मिलता। उस प्रांत में खेत बड़े-बड़े, औसतन करीब १६८ एकड़ के, होते हैं। छोटे किसान अपनी खेती पर आश्रित हैं, लेकिन शहर में मजदूरी करते हैं। वहां का सबसे बड़ा फार्म 'रांच' कहलाता है, जोकि एक छोटे-मोटे कस्बे के बराबर बड़ा है। हरेक किसान अपना काम खुद अपने-आप ही कर लेता है। साथ ही वह एक कुशल व्यापारी भी है। ये खुद के प्रयत्न से अपनी प्रगति करते हैं। इन लोगों को हम लोगों में बहुत दिलचस्पी थी, क्योंकि वहां विदेशी बहुत ही कम जाते हैं।

नेब्रास्का विश्वविद्यालय में काफी भारतीय छात्र हैं। वहां के भारतीय विद्यार्थी-संघ ने प्रतिनिधि-मंडल के स्वागत का एक अयोजन भी किया। इस विश्वविद्यालय से संबंधित कालेज, देश के उन कालेजों में से हैं, जिन्हें अच्छी-खासी खेती की ज़मीनें मिली हुई हैं। विश्वविद्यालय के कृषि-संबंधी अधिकारियों से हमारी मुलाकात हुई। इसी विभाग के अंतर्गत ४-एच क्लब भी संगठित है। हमें बताया गया कि इनके एक्सटेंशन कार्य-क्रम को कुल मिलाकर अच्छी सफलता मिली है। लिंकन-प्रवास के दौरान में हमने एक काउंटी एक्सटेंशन बोर्ड की बैठक की कार्यवाही भी देखी।

हम शिकागो में यंग क्रिश्चियन वर्कर्स के मेहमान बने। शिकागो में पहले दिन हम कुक काउंटी वेलफेयर रिहैबिलिटेशन केंद्र देखने गए, जो विपत्तिग्रस्त लोगों की सहायता करता है। हर साल करीब दस हजार व्यक्ति इसमें अपना नाम दर्ज कराते हैं, लेकिन सिर्फ तीन हजार को ही यह केंद्र काम दिलाकर बसा सकता है। इसका खर्च केंद्रीय और राज्य सर-कारें ही उठाती हैं, लेकिन काउंटी की ओर से भी कुछ मदद मिल जाती है। यंग क्रिश्चियन वर्कर्स ने इस संस्था के संगठन और कार्यों के बारे में हमें पूरी जानकारी दी। तीस प्रशिक्षणार्थियों के मुखिया ने हमें बताया कि उन तीसों व्यक्तियों को कैसे उनके संगठन की ओर से, उनके कामों की जगह से, दूसरे क्षेत्रों में ले जाकर अन्य सहयोगियों से मेल-मुलाकात बनाये रखने का प्रबंध किया जाता है।

जब हम शिकागो यूनीवर्सिटी देखने गये तो पाया कि वहां के डीन

विद्यार्थियों को अपना काम खुद करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। यह स्वयं एक अच्छे सलाहकार और मूलतः विभिन्न प्रवृत्तियों के समन्वयकर्ता व मार्गदर्शक के रूप में काम करते हैं। इस यूनियन में ४००० के करीब विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियों की १०७ संस्थाएं यूनीवर्सिटी कैंपस में संगठित हैं। इनमें से दो संस्थाएं राजनैतिक भी हैं—एक तो 'इंडिपेंडेंट स्टुडेंट लीग' है और दूसरी 'स्टूडेंट्स रिप्रेसेंटेटिव ग्रुप'। अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग क्लब बने हैं। दस-पंद्रह विद्यार्थी भी किसी एक विषय में दिलचस्पी रखते हों तो वे अपना अलग क्लब कायम कर लेते हैं। बहुत-से साहित्यिक हैं, तो अनेक भांति-भांति की कला के विकास के लिए हैं। संगीत के लिए अलग। खेल-कूद के लिए भी कई क्लब बने हैं। नई-नई भाषाओं के सीखने के लिए भी क्लब हैं और अन्य देशों की सांस्कृतिक जानकारी हासिल करने के लिए भी कई लोग उत्सुक रहते हैं।

विद्यार्थियों का अपना स्वतंत्र अखबार चलता है। इसके लिए अलग से एक लिमिटेड कारपोरेशन बना हुआ है। यद्यपि इस पत्र की नीति एक दम स्वतन्त्र है, फिर भी विश्वविद्यालय से इसको मदद मिलती है। इनकी राय विद्यार्थिथों की राय से मिलना आवश्यक नहीं है। पत्र की नीति उस का संपादक-मंडल निर्धारित करता है। इस मंडल का चुनाव विद्यार्थी ही करते हैं, पर सारे विद्यार्थी वोट नहीं दे सकते। जो इस पत्र के साथ संबंधित हैं, वे ही वोट के अधिकारी हैं।

एन आरबर में हमने दो दिन बिताये और मिशिगन स्टेट यूनिवर्सिटी देखने गये। इस यूनिवर्सिटी के कैंपस में, अन्य किसी भी एक यूनिवर्सिटी कैंपस की अपेक्षा, सबसे अधिक संख्या में भारतीय विद्यार्थी हैं। भारतीयों में भी सबसे ज्यादा गुजराती विद्यार्थी हैं। इससे यह कहावत वहां प्रसिद्ध हो गई है कि एन आरबर में अमरीकियों के बाद जिस प्रदेश का वहां सबसे ज्यादा प्रतिनिधित्व है वह है गुजरात। यूनिवर्सिटी के उपाध्यक्ष, श्री जेम्स लेविस ने, जो विद्यार्थियों से संबधित मामलों का निरीक्षण करते हैं, भारतीय विद्यार्थियों की बड़ी सराहना की।

एन आरबर यूनिवर्सिटी का सालाना बजट साढ़े सात करोड़ डालर का है। इसमें से अधिकतर पैसा प्रांतीय सरकार से मिलता है। जब हम

वहां पहुंचे तो उस समय वहां की प्रांतीय सरकार की आर्थिक हालत बहुत नाजुक थी। इसलिए उनसे यूनिवर्सिटी को पैसा नहीं मिला था और वहां के प्रोफेसर और शिक्षकों का वेतन भी नहीं दिया गया। वहां के अधिकारियों ने हमें बताया कि १८९० तक वे लोग सह-शिक्षण के पक्ष में नहीं थे। स्त्रियों को समान शिक्षा दी जाय, इसके भी पक्ष में वे नहीं थे। जब स्त्रियों को मेडिकल व दूसरे स्पेशिलाइज्ड (खास-खास विषयों के) कालेजों में प्रवेश मिला तो उस यूनिवर्सिटी में दंगे हो गये थे। अमरीका के लोग तो पिछले महायुद्ध के बाद से ही बाहरी दुनिया के प्रति जागरूक हुए है, अन्यथा वे तो अपनी आर्थिक प्रगति के बारे में ही अधिक दिलचस्पी रखते थे। उन्होंने यह भी कहा कि अमरीका को अभी अधिक उम्रवाला बनने की जरूरत है। यह बूढ़ा बनेगा तब इसे अधिक अनुभव होगा। अब हमने अमरीका के बाहर जाना शुरू किया है तो दुनिया की प्रगति में दूसरे मुल्कों ने जो कमाल हासिल किया है, उसका अंदाज लगा सकते हैं। उसे समझकर उसकी तारीफ भी कर सकते हैं। संस्कृति के क्षेत्र में दूसरे उनसे कितना आगे बढ़े हुए हैं, इसका भी पता चलता है।

उन्होंने यह भी बताया कि उनका शिक्षण मूलतः लोगों को अपने काम-धंधों में मदद करें, इसपर आधारित था। इसकी उन्हें उस समय आवश्यकता भी थी। लेकिन अब समय आगया है कि उनके शिक्षण में अधिक गहराई हो। स्पुतनिक के आविष्कार ने उन सबको घबरा दिया है, इसलिए अब उनको अधिक इंजीनियर बनाने की आवश्यकता महसूस होती है।

उन्होंने यह भी बताया कि अब वे अपने यहां बाहर के देशों से आनेवाले विद्यार्थियों पर विशेष महत्व देते हैं। जहांतक विदेशी विद्यार्थियों का संबंध है, हिंदुस्तानी विद्यार्थी पढ़ाई में उन सबसे अच्छे हैं और अमरीका के विद्यार्थियों से बराबर टक्कर लेते हैं। उनमें एक ही खामी है कि वे वहां के विद्यार्थियों से घुल-मिल जाने की बजाय अपना अलग दल बनाकर रहते हैं। यह अच्छा नहीं है।

विद्यार्थियों की 'कोआपरेटिव हाउसिंग स्कीम' के अंतर्गत, जोकि 'इंटर कोआपरेटिव' नामक संस्था का ही एक अंग है, उस समय आठ कोआपरेटिव

इमारतें थीं। इस संस्था का संपूर्ण संचालन, इन इमारतों में रहने और भोजन करनेवाले विद्यार्थियों के हाथ में ही है। भोजन बनाने, बर्तन धोने, इमारतों की देख-भाल करने आदि का सारा काम विद्यार्थी ही करते हैं। यहींपर भारतीय विद्यार्थियों ने हमारे स्वागतार्थ एक आयोजन किया, जिसमें हमारी एक सदस्या कुमारी मालती वैद्यनाथन ने भारत-नाट्यम शैली में एक नृत्य प्रस्तुत किया।

अमरीका के भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों में भारत के बहुत-से विद्यार्थी अपनी उच्च शिक्षा के लिए जाते हैं। पढ़ाई के सिलसिले में हमारे विद्यार्थियों का स्थान बहुत ऊंचा है और वहां के विद्यार्थियों में इनकी इज्जत है। वहां के अच्छे-से-अच्छे विद्यार्थियों की तुलना में भी उन्होंने अपनी होशियारी की अच्छी छाप वहां के लोगों पर डाली है।

: ७ :

अमरीका के किशोर

शिक्षण और स्वास्थ्य के ऊपर अमरीका में बहुत ही ध्यान दिया जाता है। खर्च भी खूब होता है। सैकड़ों फाउंडेशन ऐसी संस्थाओं में दिलचस्पी रखते हैं। इन संस्थाओं को और विश्वविद्यालयों को हर साल करोड़ों रुपयों की मदद देते हैं। उदाहरण के लिए हम लोग डेट्रोइट में एक मेथोडिस्ट चर्च के द्वारा चलाये जानेवाले बच्चों के गांव में गये थे। इसे बच्चों का गांव कहा तो जाता है, लेकिन इस गांव में कुल ६० बच्चे रहते हैं। इस संस्था के लिए ७० एकड़ जमीन है, जिसमें सात-आठ छोटे-बड़े मकान बने हुए हैं। एक-एक मकान में सिर्फ सात से आठ लड़के और लड़कियां रहती हैं। ये बच्चे अनाथ नहीं हैं, लेकिन इनके माता-पिता इनकी परिवरिश नहीं कर सकते। उन्हींके लिए यह संस्था चलती है। बच्चों के लिए उसी अहाते में एक स्कूल है, एक चर्च है। दफ्तर का बड़ा मकान है, बड़े-बड़े खेलने के मैदान हैं। इनमें कुछ मानसिक उच्छृंखला से पीड़ित बच्चे भी थे। ऐसे सिर्फ दस बच्चों को यहां पढ़ाया जाता है, बाकी को दूसरे सर्वसाधारण स्कूलों में भेजा जाता है। इन साठ बच्चों के ऊपर कई लाख रुपये सालाना खर्च होते हैं। हमें तो इसका अंदाज लगाना भी कठिन था। इस तरह इतना अधिक खर्च करने की आवश्यकता भी कहांतक है, इस बारे में भी हमें तो संदेह बना रहा।

इस तरह से इतना खर्च करने की वृत्ति अमरीकी लोगों में पैदा हुई, इसका एक विशेष कारण है। वे लोग प्रत्येक मनुष्य-जीवन को बहुत ही महत्व की दृष्टि से देखते हैं। यदि कोई शारीरिक या मानसिक दृष्टि से पंगु हो तो उसको ठीक करके, साधारण आदमी बनने के लिए अधिक-से-अधिक खर्च और मेहनत करने के लिए वे तैयार रहते हैं। वे मानते हैं कि उस व्यक्ति को भी, दूसरों के समान ही, स्वभाविक और उपयोगी जीवन

बिताने का अधिकार है। व्यक्तिगत समानता और स्वतन्त्रता की भावना यहां अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है।

हर माता-पिता को अपने जवान बच्चे के बारे में फिक्र लगी रहती है कि वह लड़का सुशील, समझदार और कामयाब हो। लेकिन व्यस्तता के कारण बच्चों के जीवन को गढ़ने में माता-पिता का बहुत कम हाथ रहता है। वे खुद तो समय दे नहीं पाते, इसलिए बच्चों का भविष्य उन्हें बहुत-कुछ राम भरोसे छोड़ देना पड़ता है। जब लड़का स्कूल और कालेज में जाता है और कुछ बड़ा होता है तो अपनी इच्छा के अनुकूल ढालने में माता-पिता कुछ कर नहीं पाते। मां-बाप को इतना समय नहीं रहता कि अपने बच्चों के साथ समय बितायें और उनके रोजमर्रा के जीवन में दिलचस्पी लें। सबको अपने-अपने कामों से फुर्सत नहीं मिलती। इसलिए बच्चों का मानसिक विकास कैसे हो रहा है, किशोर अवस्था में पहुंचकर उनकी क्या समस्याएं हैं, इनको न वे समझ पाते हैं, न उनको सुलझाने में हाथ बंटा सकते हैं। साथ ही किशोरों के बाहर आने-जाने या अपने लड़के-लड़कियों को उनके दोस्तों के साथ पूरी आजादी से मिलने-जुलने और बाहर आने-जाने पर उनका कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसका नतीजा यह हो गया है कि शादी-विवाह भी लड़के व लड़कियां अपनी ही पसंदगी से करते हैं। ऐसी हालत में नई बहू का अपने सास-ससुर के घर में घुल-मिल जाना बड़ा मुश्किल होता है। इसलिए शादी होने पर जवान लड़का अलग घर बसाकर रहने लगता है।

किशोरों की मानसिक अस्थिरता का मेरी समझ में एक और भी महत्वपूर्ण कारण है। अमरीका के लोग और कुटुम्ब अपेक्षाकृत बहुत तेजी से मालदार बन गये। जैसे एक कुटुम्ब जब बिना पूरी मेहनत के आसानी से और बहुत जल्द खूब पैसा कमा लेता है तो उसकी जैसी दशा होती है वैसी ही कुछ-कुछ आज अमरीका के बहुत-से कुटुंबों में देखने को मिलती है। कोई साधारण कुटुंब सट्टे में या लाटरी में जल्दी से बहुत-से पैसा कमा ले तो उसे पता नहीं चलता कि उस पैसे का क्या और कैसे उपयोग करे? पैसे को पचाने की भी एक परंपरागत संस्कृति होती है। पैसे को उड़ाये बगैर व्यवस्थित रूप से, उसका शान और ठाठ

से उपयोग करना तभी संभव है जब पैसे के भार से दबें नहीं, लेकिन सही मानों में उसके मालिक बन जायं। मैं मानता हूं कि अमरीका में इस धन की आकस्मिक विपुलता की वजह से इस तरह की समस्याएं खड़ी हो गई हैं, जिसके बारे में वे लोग खुद बहुत चिन्तित और परेशान हैं।

इस बारे में उदाहरण देना हो तो लॉस एंजलेस में स्थित कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी का दिया जा सकता है। वहां करीब पंद्रह हजार लड़के पढ़ते हैं। उनमें से दस हजार लड़कों के पास अपनी खुद की मोटरें हैं। मोटर है, इसका यह भी मतलब हुआ कि उन लोगों के पास काफी पैसा भी है, जिसे वे मनचाहे ढंग से खर्च कर सकते हैं। कालिज की पढ़ाई होने के बाद अपने खाली घटों में वे क्या करें ? यह समस्या उनके सामने रोज ही आकर खड़ी हो जाती है। लड़के-लड़कियां साथ पढ़ते हैं, मित्रता हो ही जाती है। इस मित्रता में स्वाभाविक ही एक-दूसरे के प्रति आकर्षण रहता है। ये नौजवान और नवयुतियां एक-दूसरे की मित्रता और सहवास में समय बिताना पसन्द करते हैं। नाटक, सिनेमा, क्लब-रेस्तरां, नाच-घर, नाइट-क्लबों आदि में अधिकतर साथ जाना और शराब आदि नशीली चीज़ें पीना उनके जीवन का अंग-सा हो गया है। इसकी वजह से जीवन के दृष्टि-कोण में जो खराबियां आना स्वाभाविक हैं, वे आ जाती हैं।

इन्हीं बातों के परिणामस्वरूप, जैसे कि मिशीगन स्टेट के गवर्नर श्री विलियम्स ने हमें बताया था, बहुत-से अमरीकियों को कुछ समय के लिए तो पागलखाने का चक्कर जरूर लगाना पड़ता है। यह परिस्थिति सच-मुच में ही अमरीका के नौजवान माता-पिता के लिए बड़ी शोचनीय हो गई है। नई-नई शादियां बिना किसी अनुभव के जल्दबाजी में हो जाती हैं और परिणामस्वरूप कौटुंबिक जीवन में अशांति और फिर तलाक तक की नौबत आ जाती है।

इस तरह से आये हुए विपुल वैभव को पचाने की ताकत आती है अध्यात्मिक दृष्टिकोण से। मनुष्य जब अपने जीवन के बारे में और कर्तव्य के बारे में गहराई से सोचने लगता है और भगवान की तरफ अभिमुख होता है तो फिर रोजमर्रा के भड़कीले जीवन में बह नहीं जाता। धीरे-धीरे

वह अपने जीवन को उन्नतिशील बनाने में लग जाता है। इन बाहरी आडं-बरों में जो क्षणिक सुख है, उससे आकर्षित न होकर मानसिक शांति की तरफ मुड़ता है, जो कि सतत सत्कर्म, सेवा और उद्योग से ही मिल सकती है। जीवन का स्तर ऊंचा करने की बजाय जीवन को सादगीमय बनाने में जो चैन और आराम मिलता है, उससे अमरीका के लोग पूरी तरह वंचित है।

अब लोगों का ध्यान इस कमी की ओर जा रहा है। भारत सरीखे पुरानी संस्कृतिवाले देशों की तरफ उनकी नजर जा रही है। हमारे पुराने वाङ्मय और साहित्य को पढ़ने में उनकी रुचि बढ़ रही है और योगसाधना की तरफ भी आकर्षण हो रही है।

एक बार हम रेल द्वारा न्यूयार्क से वाशिंगटन जा रहे थे। वहां के रेलों के डिब्बों में भीतर-ही-भीतर शुरू से आखिर तक जाने का रास्ता बना होता है। रेल के बीच में दो-तीन पूरे डिब्बे किसी कालिज के विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित किये हुए थे। मैं जब एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में कुछ काम से गया तो इन डिब्बों से गुजरना पड़ा। इन तीनों डिब्बों में कालिज के लड़के-लड़कियां भरे थे। इनकी उम्र करीब सोलह से बीस की होगी। सब फर्स्ट क्लास में थे और एक-एक के लिए एक-एक सीट पहले से निश्चित की हुई थी। कालिज की तरफ से ये लोग या तो भ्रमण के लिए या किसी विषय का अभ्यास करने के लिए कहीं जा रहे होंगे। कुछ लड़के व लड़कियां पैर फैलाकर सो रहे थे, कुछ पढ़ रहे थे। कुछ लड़के अपनी दोस्त लड़कियों के साथ घुल-मिलकर वार्तालाप कर रहे थे। कुछ लड़के तो निस्संकोच आपस में प्रेमालाप और प्रेमालिंगन भी कर रहे थे। उनके और साथियों के सामने और दूसरे कई लोग जो आ-जा रहे थे, उनके सामने भी उन्हें किसी तरह की शर्म या संकोच नहीं मालूम हो रहा था, यहांतक कि उन-को शायद यह भी नहीं महसूस हो रहा था कि वह कोई गलत या अनपेक्षित काम कर रहे हैं। ऐसा लगा कि यह इन बच्चों के दैनिक जीवन का अंग ही बन गया है। यह हालत इन वर्षों में कुछ अधिक बढ़ गई है, ऐसा लगता है, खासकर लड़ाई के जमाने में जब अमरीका के नौजवान सिपाही बड़ी संख्या में बाहर के देशों में गये तो वहां उन्हें इस तरह का जीवन बिताने

की पूरी तरह स्वतन्त्रता और छूट मिली। सिपाही तो वे थे ही, पैसा भी खूब था, इसलिए जहां कहीं भी जाते, उनको लड़कियों के साथ खुलकर समय बिताने का खूब मौका मिला। उनके जीवन में जो यह एक तरह की उच्छृङ्खलता आ गई है, उसको रोकने में उन्हें बड़ी कठिनाई होगी

यह सब होते हुए भी कौटुंबिक पवित्रता की भावना अभी भी उनमें कायम है, खासकर बड़ी उम्र के लोगों में। तलाक बहुत ज्यादा नहीं होते। तलाक को वहां भी अच्छी नज़र से नहीं देखा जाता है। जहांतक हो सके उससे बचने की कोशिश की जाती है। शादी से पहले लड़का-लड़की आपस में आजादी से मिलें-जुलें, इसकी पूरी स्वतंत्रता मां-बाप देते हैं। जब लड़के-लड़की को खुद अपनी पसंदगी करनी है तो इसके अलावा कोई चारा भी तो नहीं रह जाता। जबतक वे आपस में कई लोगों से बार-बार नहीं मिलेंगे और घनिष्टता नहीं कायम होगी तबतक वे अपना जीवन-साथी किस प्रकार चुन सकेंगे ? लेकिन शादी के बाद कोई लड़का अन्य स्त्रियों के साथ आजादी से मिले, इसको कतई पसन्द नहीं किया जाता है।

वहां बड़े-से-बड़े और नामी परिवार के लड़के व लड़कियां साधारण-से-साधारण व्यक्ति से शादी कर लेते हैं। उसमें न तो उनके माता-पिता रुकावट डालते हैं, न समाज में उसे बुरा या हलका ही माना जाता है। इतना होते हुए भी अधिकतर लोग क्रिश्चियन धर्म में गहराई से विश्वास करते हैं और विवाह को बड़ा पवित्र बंधन मानकर जीवन भर उसे खुशी से निबाहने का प्रयत्न करते हैं। हॉलीवुड में बने फिल्म आदि को देखकर वहां के जीवन के बारे में हमारी धारणा बना लेना गलत होगा। सिनेमा-जगत का जीवन तो हर जगह ही अलग होता है, लेकिन वह तो, जैसा हमारे यहां है, वहां भी अस्वाभाविक है और वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

साथ-ही-साथ इस समस्या का एक दूसरा पहलू भी मुझे पाठकों के सामने रख देना चाहिए। एन आरबर यूनिवर्सिटी के अधिकारियों से जब हम मिले तो उनमें से एक ने कहा कि उसको पक्का भरोसा है कि सह-शिक्षण और लड़के-लड़कियों के स्वतन्त्रता से मिलने-जुलने से लाभ ही हुआ है। उनका आपस का संबंध सुधरा है और उनमें नैतिकता भी बढ़ी

है। अब वहां के विद्यार्थी और युवक कम उम्र में शादी करने लगे हैं। अधिकारी के खुद के जमाने में, विद्यार्थी रहते हुए कोई शादी की बात सोचता भी नहीं था। अब तो वहीं करीब चार-पांच हजार विद्यार्थी शादी-शुदा हैं। एक साथ पड़ते या काम करते हैं। वह लड़के-लड़कियों की शादी कम उम्र में हो, इसके पक्ष में थे। उनके मतानुसार आज अमरीका के युवक सुधार पर हैं। अखबार, फिल्म आदि में अनैतिक खबरें और चित्रों आदि का इतना प्रचार होते हुए भी वहां के नवयुवक गिरने के बजाय सुधर ही रहे हैं। उनकी नीतिमत्ता भी बढ़ रही है। उन्होंने यह भी बताया कि गत महायुद्ध में लाखों अमरीकी नवयुवकों को सैनिक बनकर या दूसरी हैसियत से विदेश जाने का मौका मिला, इससे उनका दिलोदिमाग खुला है और दुनिया को देखने का परिणाम उनके दिमाग पर अच्छा ही पड़ा है।

एक बात में अमरीकावालों ने बड़ी प्रगति की है। इसका उनके नव-युवकों पर बड़ा अच्छा असर है। वह है श्रम की प्रतिष्ठा—हर काम को और उसके करनेवाले को समान समझना। कोई भी काम छोटा या बड़ा नहीं। धनवान-से-धनवान आदमी भी छोटे-से-छोटा काम करने में शर्म महसूस नहीं करता, न हिचकिचाता है। रेलवे स्टेशन आदि पर, जहां कुली हो तो भी धनवान आदमी भी, जिसको पैसा बचाने की कोई परवा नहीं है, अपना सामान अपने हाथों से ले जायगा। घर में नौकर आदि रखने की गुंजाइश होते हुए भी वे लोग अपना सारा काम खुद अपने हाथों से कर लेना पसंद करते हैं, यहांतक कि झाड़-पोंछ, बरतन मांजना आदि सारा काम धनी घर की स्त्रियां भी अपने हाथों से करती हैं। हां, मशीनों की मदद से सारा काम जल्दी निपट जाता है और उसमें गंदगी भी कम महसूस होती है। साफ-सफाई या दूसरा कोई हलका काम करने की वजह से कोई आदमी हलका समझा जाय या उसका दर्जा कम हो, ऐसी कोई बात नहीं है।

हमारे सारे ग्रंथों में इस बात पर बहुत ज़ोर दिया है, हमारा धर्म और संस्कृति भी इसपर ज़ोर देती है, गांधीजी ने भी बराबर ज़ोर देकर हमें समझाया है कि हमको काम की वजह से लोगों में फर्क नहीं करना चाहिए, फिर भी अफसोस की बात है कि हमारे देश में इस तरह की समानता अभी तक नहीं आई है। अमरीका में इसका सही मानों में पालन हो रहा है।

इसके अनेक ऐतिहासिक कारण भी हैं। अमरीका एक नया देश है, बड़ा देश है और यहां की जनसंख्या बहुत कम है। अनेक कारणों की वजह से यह संभव हुआ है, फिर भी हमें मानना चाहिए कि अमरीका के लोगों के लिए यह एक बड़े गर्व करने लायक स्थिति उन्होंने कायम की है। नई पीढ़ी के लिए, उनकी मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति के लिए, यह एक बड़ी देन है। वहां के बालकों और किशोरों को इस वातावरण का जरूर लाभ मिलेगा।

: ८ :

अमरीका के कुछ छोटे-बड़े कारखाने

हम लोग अमरीका में पहली बार पहुंचे ही थे। न्यूयार्क में हमारा दूसरा दिन था। न्यूयार्क के दोस्तों ने हमारे लिए पहले से ही कुछ कार्य-क्रम निश्चित कर रखा था। उन्होंने कहा कि सबसे पहले हमको न्यूयार्क के बड़े-से-बड़े कारखाने में ले जायंगे। हम बहुत खुश हुए। अमरीका में दुनिया के बड़े-से-बड़े उद्योग हैं। न्यूयार्क वहां का सबसे बड़ा व्यावसायिक नगर है। हमने पूछा कि किस चीज़ के कारख़ाने में हमें ले चलेंगे तो उन्होंने जान-बूझकर पहले से हमें कुछ बताया नहीं।

जब हम लोग कारखाने में पहुंचे तो हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। शहर के ही एक कोने में एक साधारण मकान में हमें ले गये। वहां से लिफ्ट में आठवीं या दसवीं मंजिल पर हमें उनके छोटे-से दफ्तर में ले गये। कहीं आस-पास में भी कारखाना हो, इसकी गुंजाइश नहीं लग रही थी। न बड़ी-बड़ी मशीनें दीख रही थीं, न कहीं से वेगन या लारियां भारी-भारी सामान ला रही थीं, न ज़ोरों का प्रकाश ही था। हमारी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर यह कौन-सा गोरख-धन्धा है। कहीं भूल से हमें गलत जगह तो नहीं ले आया गया। पर क्योंकि नये-नये ही वहां पहुंचे थे, इसलिए एक सभ्य मेहमान की तरह चुपचाप जहां वे कहते उनके पीछे-पीछे जा रहे थे। अपने अज्ञान का प्रदर्शन भी तो नहीं करना था न ?

जब कारखाने के अन्दर पहुंचे तब पता चला कि वहां स्त्रियों के लिए कपड़ों की सिलाई होती है। अमरीका में बने-बनाये कपड़े पहनने का ही अधिक रिवाज है। माप देकर दर्जी से कपड़े बनाना तो वहां बहुत महंगा पड़ता है। बहुत बड़े परिमाण में एक साथ अलग-अलग माप के कपड़े बनाकर छोटे-बड़े स्टोर्स और दुकानों को बेच देते हैं।

न्यूयार्क शहर में लोहे, मोटर, मशीनरी आदि बनाने के कोई बड़े

कारखाने नहीं हैं। वहां तो व्यापार, आयात-निर्यात, शेयर्स खरीदी-बिक्री आदि का काम अधिक होता है। कारखाने तो उत्तर में शिकागो-डेट्रोइट विभाग में ज्यादा बने हुए हैं। चूंकि इन कपड़ों के सिलाने के बहुत-से छोटे-मोटे 'कारखाने' न्यूयार्क में हैं और इसी व्यवसाय में वहां अधिक-से-अधिक मज़दूर काम करते हैं, इसलिए हमारे मित्रों ने कहा था कि वे हमें न्यूयार्क के सबसे बड़े उद्योग को बताने ले जा रहे हैं।

अमरीका में बना-बनाया तैयार कपड़े बनाने का काम बहुत बड़े परिमाण में होता है। सारे देश में कितना कपड़ा खर्च होता है, इसका अपने लिए तो अन्दाज़ लगाना भी कठिन है। हम लोगों की अपेक्षा वहां हर व्यक्ति के पीछे औसत कपड़े का खर्च कम-से-कम तीस-चालीस गुना अधिक तो होगा ही। जब सारे ही लोग बने-बनाये कपड़े ही खरीदें तब कितनी संख्या में ऐसे कपड़े बनते होंगे, इसकी कुछ कल्पना पाठकों को हो सकेगी।

रोज नई-नई फेशन निकलती है। कभी गले के काट में फर्क कर दिया तो कभी पट्टे का ढंग बदल दिया। कभी फ्रॉक लम्बाई में छोटा कर दिया तो कभी बड़ा। इस तरह से नई फैशन चलाकर ये पुराने कपड़ों का चलन बन्द करवा देते हैं। लोगों को नये-नये कपड़े खरीदने के लिए करीब-करीब बाध्य-सा कर देते हैं। नई-नई डिजाइनें बनाने में करोड़ों-अरबों रुपये खर्च कर देते हैं। अच्छी डिजाइनें बनानेवालों को भरपूर पगार दी जाती है।

इन कपड़ों को बनाने के लिए बहुत बड़ी पूंजी लगाकर बड़े-बड़े कारपोरेशन बने हुए हैं। उन सबकी आपस में मिली-जुली संस्थाएं एवं एसोसियेशन भी हैं। इन सबके प्रतिनिधि मिलकर आपस में फैसला करते हैं कि अब अगले वर्ष के लिए किस तरह का फेशन चलाना है। अगले वर्ष के लिए स्वेटर का गला नये ढंग का बनाना तय हुआ तो फिर पुराने ढंग का स्वेटर कोई नहीं बनाया और उसका चलन ही बन्द हो जायगा। यह कार्य-क्रम बड़ी होशियारी और सोच-समझकर बनाया जाता है, क्योंकि इसीपर सारे वर्ष की बिक्री और मुनाफा निर्भर करता है। सारे वर्ष की आवश्यकता का अनुमान पहले से लगाकर उस मुताबिक अपना उत्पादन का कार्य-क्रम बनाते हैं। इस तरह के व्यवस्थित और पूर्व-निश्चित कार्य-क्रम के अनुसार कपड़े बनाकर और विज्ञापन आदि के द्वारा कुछ इस तरह

का वातावरण बनाते हैं कि साधारण आदमी के पास पुराने कपड़े होते हुए भी इनके पास से और नये कपड़े खरीदने के अलावा उसके पास और कोई चारा नहीं रह जाता। खरीददार, सर्वसाधारण व्यक्ति, जिनको ये अपना मालिक समझते हैं, उन्हींको भुलावे में डालकर लूटते रहते हैं और अपनी सम्पति को बढ़ाते हैं। अमरीका के जीवन में जो इस प्रकार की एक दौड़ ज़ोरों से चलती है, उसका दर्शन हमें वहां पहुंचते ही मिल गया।

अब जिनको हम कारखाने समझते हैं, ऐसे कुछ कारखानों का परिचय कीजिये।

शिकागो शहर में दुनिया के और किसी भी शहर से ज्यादा मोटरें बनती हैं। ऐसे कारखानों में जो 'असेम्बली लाइन' होती है, याने जहां गाड़ी के अलग-अलग पुर्जे फिट करके गाड़ियां तैयार की जाती हैं, वह दृश्य देखने लायक होता है। हम लोगों को वहां के विश्व-विख्यात फोर्ड मोटर बनाने के कारखाने में ले जाया गया। यहां अड़तालीस सेकंड में एक गाड़ी तैयार होकर निकलती है। शुरू से आखिर तक छोटे-बड़े पुर्जे, इंजन, सीट, गाड़ी के दरवाजे आदि सब एक के बाद एक चारों तरफ से मशीन की मदद से बराबर आते रहते हैं। वहां बहुत थोड़े ही व्यक्ति काम पर होते हैं, जो इन पुर्जों को अपनी-अपनी जगह लगा देते हैं। अलग-अलग पांच तरह की गाड़ियां एक के बाद एक, जिस नम्बर में बिक्री के आर्डर आये हुए हैं, उसीके अनुसार तैयार होती हैं। कोई एक रंग की गाड़ी है तो कोई दुरंगी। रंग भी भांति-भांति के। कोई दो दरवाजेवाली गाड़ी तो कोई चार की। कोई बन्द गाड़ी तो कोई ऊपर से खुलनेवाली। सबके इंजन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस नंबर का चेसिस है उसी हिसाब से उसके और पुर्ज़े भी एक के बाद एक ठेठ तक चले आते हैं। अनेक चेसिस एक घूमनेवाली बहुत लम्बी जंजीर लगी हुई मशीन के ऊपर अपनी गति से लगातार चलते रहते हैं। इसलिए उसकी गति के हिसाब से मज़दूरों को हर गाड़ी के पुर्ज़े उसमें लगा ही देने पड़ते हैं। यदि ज़रा-सी गलती हुई तो सारा मामला चौपट। जैसे-जैसे पुर्जे फिट हो जाते हैं, गाड़ी अपना स्वरूप लेती रहती है। जब हम इसके आखिरी हिस्से पर पहुंचते हैं तो हर अड़तालीस सेकंड में एक ड्राइवर आकर, नई गाड़ी में बैठकर फुर्ती से उसको चालू करके, गाड़ी को चलाते

हुए वहां से बाहर ले जाता है। इस कारखाने में प्रतिदिन के सोलह घंटों में १०४० गाड़ियां बनाती हैं। इस एक कारखाने में करीब ८२०० गाड़ियों के पुर्जे भी बनते हैं। सिर्फ फोर्ड कम्पनी के पुर्जे बनाने के ऐसे ही चार कारखाने हैं। वहां फोर्ड कम्पनी के और भी कई कारखाने हैं। अमरीका की सिर्फ यह एक संस्था मोटर और लारियां आदि मिलाकर प्रतिदिन दस-ग्यारह हजार गाड़ियां बनाती है। इस तरह की क्राइसलर आदि के और भी अनेक छोटे-मोटे मोटर बनाने के कारखाने वहां हैं।

गाड़ियों की खपत कितनी होती है, इसका भी एक उदाहरण लीजिये। हम अमरीका के नवीनतम और सुन्दर हवाई अड्डे डल्लस (टेक्सस) से गुजर रहे थे। १ मार्च का दिन था। रास्ते में हमें वहां का 'डल्लस टाइम्स हेराल्ड' पढ़ने को दिया गया। उस रोज इतवार का संस्करण था। १८० पृष्ठ का अखबार था। उसमें १२ विभाग थे और अखबार की कीमत केवल १५ सेंट। उसमें यह खबर छपी थी कि १ मार्च १९५९ तक की दसवीं लाख मोटर गाड़ी गत वर्ष से दो सप्ताह पहले बनी। इसमें क्राइसलर कारपोरेशन ने ६३ हज़ार गाड़ी बनाई। चालू वर्ष की तबतक की गाड़ियों की बिक्री की संख्या ४६,५१,००० तक पहुंच गई थी।

हम लोगों ने हेनरी फोर्ड द्वारा निर्मित ग्रीनफील्ड गांव में भी चंद घंटे बिताये। यह गांव तो देखने लायक ही है। करीब सत्तर-अस्सी वर्ष पुराने जमाने में अमरीका में जैसे गांव होते थे, ठीक उसी हालत में इसे बनाया गया है। इसे देखकर अमरीका के पुराने जमाने का अन्दाजा दर्शकों को हो जाता है। अमरीका में चीज़ें और जीवन इतनी तेजी से बदलते जा रहे हैं कि आज की पीढ़ी को सिर्फ एक पीढ़ी के पहले लोग कैसे रहते थे, इसका अन्दाज लगाना कठिन हो जाता है। पुरानी चीज़ें, मकानात तोड़ते जाते हैं और नये बनाते जाते हैं। इससे पुरानी चीज़ों को देखने की उन लोगों में बड़ी भारी उत्सुकत्ता रहती है। इस गांव में दर्शकों की भीड़ हमेशा लगी रहती है। हेनरी फोर्ड ने किस तरह धीरे-धीरे अपना काम बढ़ाया, इसका भी पूरा चित्रण वहां मिलता है। उसने कहां बैठकर किस तरह कब क्या किया इसका पूरा इतिहास जानने को मिल जाता है। शुरू की मोटर बनी थी, उससे आज तक मोटरों में कैसे विकास हुआ, इसे बताने के लिए

सैकड़ों गाड़ियां एक अलग अजायबघर में रखी हैं। हर तरह की गाड़ियों के नमूने वहां हैं और उनके आग्रह से वे सारी गाड़ियां वहां चालू हालत में रखी गई हैं। वहां हर जमाने के रेल-इंजन भी हैं। उसमें भी किस तरह विकास हुआ, इसका अन्दाज आ जाता है। शुरू का उड़नखटोला और हवाई जहाज भी वहां रखा हुआ है। जगह-जगह गाइड रखने मुश्किल और मंहगे भी होते हैं, इससे मशीने लगी हुई हैं। बटन दबाते ही रेकार्ड बजने लगेगा और उस जगह जो चीज रखी है, उसकी विशेषता को बयान कर देगा।

नाक्सबिल (टेनेसी) में सबसे पहले हम टेनेसीवेली एडमिनिस्ट्रेशन के हेड क्वार्टर्स गये। पर्सोनेल डिवीजन के असिस्टैंट जनरल मैनेजर डा० जे० एच० डेब्स ने हमें फेडरल एजेंसी की कार्य-प्रणालियों के सम्पूर्ण विवरण से परिचय कराया। टेनेसीवेली एडमिनिस्ट्रेशन ने इस क्षेत्र की आमदनी में १९२९ से १९५९ के दरम्यान ३५४ प्रतिशत की वृद्धि की है, जबकि देश के अन्य भागों में इसी दरम्यान २५ प्रतिशत की वृद्धि हो सकी है। टी० वी० ए० की स्थापना के पूर्व इसी क्षेत्र के केवल ३ प्रतिशत किसान बिजली का उपयोग कर पाते थे, जबकि अब ९७ प्रतिशत करते हैं।

शिकागो में हमने एक छोटी स्टील की फैक्टरी देखी। यह फैक्टरी रोज का ५० टन माल एक पारी में पैदा करती है। ये तीनों पारियां चला सकते हैं। पर फिलहाल एक ही चल रही थी। मजदूरों की संख्या ३२५ थी। यहां सिर्फ एक ही मजदूर-यूनियन था और हर मजदूर को उसका मेंबर बनना लाजमी था। फैक्टरी के पास जब काम कम हो तब उनको अधिकार है कि वे मजदूरों को कुछ दिनों के लिए काम पर से हटा दें—बिना तनख्वाह दिये। ऐसे लोगों को सरकार की तरफ से करीब ३५ डालर प्रति सप्ताह घरबैठे मजदूरी मिलती है। मजदूरों की मूल पगार १-९२ डालर प्रति घन्टे है। यदि माल का उत्पादन अधिक हुआ तो १ डालर प्रति घंटे तक अधिक मिल जाता है। इस कारखाने में ६५ प्रतिशत मजदूर नीग्रो हैं व बाकी के 'सफेद' अमरीकी। दो नीग्रो फोरमेन भी हैं, जिनके नीचे कई 'सफेद' आदमियों को भी काम करना पड़ता है। एक-सा काम करनेवाले 'सफेद' या 'काले' मजदूरों की मजदूरी में कोई फर्क नहीं है। ये

लोग एक सप्ताह में पांच दिन और प्रति दिन आठ घन्टे काम करते हैं।

इन मजदूरों के लिए कारखानों की तरफ से रहने के लिए घर आदि देने की कोई व्यवस्था नहीं है। जब जितने मजदूर चाहिए, मिल जाते हैं। यहां मजदूरों की कमी नहीं है, बल्कि शिकागो में तो बेकारी की समस्या बड़े परिमाण में पाई जाती है। यह कारखाना चार वर्ष में अपनी लगाई हुई पूरी पूंजी को नफे के रूप में वापस प्राप्त कर लेने की उम्मीद रखता है। इस कारखाने में न तो कोई खास सफाई नज़र आती थी, न मजदूरी बचाने के लिए विशेष मशीनीकरण किया गया था। दफ्तर और कारखाने के मकानात भी मामूली से ही बने थे। उनका कहना था कि वे मशीनों को भले ही खाली रख लें, पर मजदूरों को खाली बैठने नहीं दे सकते। यह उन्हें नहीं पोसा सकता। हमारे देश में स्थिति इसके विपरीत पाई जाती है। हमें तो मशीनों का दाम बहुत ज्यादा देना पड़ता है, जबकि मजदूरी यहां अपेक्षाकृत बहुत कम है।

शिकागो में स्किल कारपोरेशन नामक मशीन टूल फैक्टरी भी हमने देखी। वहां कुल मजदूर एक हजार हैं। मजदूरों का कोई यूनियन नहीं है। उद्योगपति ही उनके हितों की पूरी रक्षा करते आये हैं। इससे इन्हें अपना यूनियन अलग से बनाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। मालिकों की तरफ से मजदूरों के साथ जन-सम्पर्क स्थापित करने और उसे बनाये रखने के लिए विशेष व्यवस्था है। कई अधिकारी सिर्फ इसी काम के लिए नियुक्त किये गए हैं। इनका काम ही यह है कि सारे देश की मजदूरी कब-कैसे बढ़ती है, उसका अध्ययन करते रहें और बिना मांगे ही, खुद होकर, जब आवश्यक हो, मालिकों को राजी करके, मजदूरी बढ़ा देवें। हर मजदूर इन अफसरों के पास अपनी निजी शिकायतें लेकर पहुंच सकता है और ऐसी शिकायतों को दूर करने का वे भरसक प्रयत्न करते हैं। इन दिनों ये सप्ताह में छः दिन और प्रतिदिन नौ घन्टे काम करते थे, यानी सप्ताह में कुल ४५ घंटे हुए। ४० घंटों के ऊपर जितनी देर काम हुआ उसकी मजदूरी ड्योढ़े के भाव से मिलती है। कम-से-कम मजदूरी १-३० डालर प्रति घंटे और अधिक-से-अधिक ३-०६ डालर है। फैक्टरी बहुत साफ-सुथरी है। इस तरह के कारखाने अमरीका में गिने-चुने ही हैं।

: ६ :

ये अलादीन के चिराग़

बटन दबाते ही जल्दी-से-जल्दी काम हो जाय, इसके लिए नई चीजें और छोटी-छोटी मशीनें अमरीका में निकलती ही रहती हैं। समय और मजदूरी दोनों को बचाने और साथ-ही-साथ कम-से-कम मेहनत करके अधिक-से-अधिक आराम मिले, इसका प्रयत्न हरदम जारी रहता है। हरेक आदमी इस कोशिश में रहता है कि अपनी नई सूझ-बूझ से कोई नई चीज का निर्माण करे। यदि वह चल पड़ी तो उसके पेटेंट से उसकी अच्छी-खासी आमदनी होने लग जाती है।

वहां की खाने-पीने की चीजें बनानेवाली मशीनों के बारे में तो हम लोगों को काफी जानकारी है ही। हर तरह के खाद्य पदार्थ बन्द डिब्बों में मिलते हैं। फल और साग तो मिलते ही हैं, पर एक बार के पकाये हुए चावल आदि भी ऐसे डिब्बों में मिलते हैं। ऐसे चावल को 'दो मिनट में तैयार चावल' कहते हैं। असल में यह बात एकदम सही भी है। डिब्बा खोलकर दो मिनट में ही, बिजली के चूल्हे पर रखने से खाने लायक चावल बन जाता है। लेकिन वह स्वाद व लज्जत और मिठास इस तरह के पके हुए चावल में कहां, जो मन्द-मन्द आंच पर पके हुए चावल के खाने में आती है।

जब हम वाशिंगटन में थे तो हमें भी अमरीका के रसोई और खाना पकाने-सम्बन्धी अनुभव लेने की सनक सूझी। होटल में छोटे रसोईघर के साथ भी कमरे मिलते थे। हमारे कमरे के साथ लगा हुआ एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें चूल्हा व रेफ्रीजरेटर वगैरह थे। अपने ही हाथों से उसी कमरे में खाना पकाने का तय किया। इस काम के लिए सबसे पहला जरूरी काम था सुपरमारकेट (सर्वव्यापी बाजार) में जाना। इन बाजारों में खाने-पीने की हरेक चीज़ तैयार मिलती है। अधिकांश चीजें टिन में

डिब्बाबन्द की हुई होती हैं। यहां डबल रोटी, मक्खन, साग-सब्ज़ी, रिफ्रिज़-रेटर में रखी हुई आइसक्रीम सभी कुछ मिल जाता है। इतने बड़े बाजार के होते हुए व्यवस्था के लिए आदमी बहुत ही कम होते हैं। कई छोटी-छोटी पहियोंवाली गाड़ियां रखी रहती हैं। जो चीज़ चाहिए, उसे अपने ही हाथ से उसमें रखते जाइये और फिर खुद ही उस गाड़ी को ठेलकर ठेठ तक ले आइये। वहांपर झट से आपका हिसाब कर दिया जायगा। हिसाब भी मशीनों की मदद से तुर्त-फुर्त हो जाता है। इस तरह चटपट बहुत ही कम समय में तमाम छुट-पुट खरीदी हो जाती है। बनी-बनाई सब्जियां व सूप डिब्बों में बन्द खानेवालों की इन्तजार में ही रहते हैं। सिर्फ गर्म भर करना पड़ता है। हम उनमें कुछ मसाले और मिला देते थे। चावल तो तुरन्त तैयार हो जाते थे। जितनी देर में चावल पकें उतने में डबलरोटी काट ली जाती थी। खाने के अन्त में पिछावरी के लिए बनी-बनाई कई प्रकार की आइसक्रीम मिल ही जाती थी। उन्हें पहले से लाकर रेफ्रीज़रेटर में रख देते थे। इस प्रकार घंटों का काम मिनटों में हो जाता था। इसमें पैसे आधे लगते थे और मजा दूना आता था। रेस्तरां में खाना खाने जाओ तो खाना परोसने की मजदूरी ही काफी हो जाती है। अपने कमरे में इच्छानुसार अपनी सुविधानुसार जब चाहते हिन्दुस्तानी तरीके से अचार वगैरह के साथ हम अपनी पेट-पूजा कर लेते थे। हमने हफ्ते भर वाशिंगटन में इसी प्रकार बिताया।

यद्यपि मेरी पत्नी को खाना पकाने का न तो विशेष ज्ञान ही था, न अभ्यास ही। फिर भी वहां तो वह बिना परिश्रम के न जाने किस चिराग़ की करामात से एक कुशल 'रसोइया' हो गई। थोड़ी-सी मेहनत से ही अच्छा खाना बनाकर हमें खिलाने लगी। इतना ही नहीं, हमने भारतीय मेहमानदारी को भी पिछड़ने नहीं दिया और अपने दूसरे भारतीय साथियों को भी निमंत्रित किया और उनको भी इस तरह का खाना खिलाकर बिना किसी तकलीफ के मेजबानी का लुत्फ उठाया।

स्टेशन पर, हवाई जहाज के अड्डों पर, सिनेमा-घरों आदि में तरह-तरह की छोटी-बड़ी मशीनें लगी रहती हैं। उनके पास कोई व्यक्ति नहीं होता। निश्चित रकम का सिक्का उसमें डालने से आप चाहें जिस प्रकार

का सेंडविच एकदम तैयार हालत में या तरह-तरह के केक मशीन में से बाहर आ जायंगे। इसी तरह से सिगरेट, चाकलेट, पापकार्न आदि चीजें भी तुरन्त निकल सकती हैं। लेमनेंड, आरेंज आदि पेय पदार्थ की शीशियां भी बटन दबाने से झट से बाहर आ जाती हैं।

वहां मजदूरी महंगी होने से हर जगह उससे बचने का प्रयत्न करते हैं। अपने-आप खाना परोस लेने के रेस्तरां और होटल वहां बहुत हैं। ऐसे होटलों में खाना अपेक्षाकृत बहुत सस्ता भी मिलता है। 'सेल्फ सर्विस रेस्तरां' के बजाय ऐसे होटल में, जहां वेटर्स खाना परोसते हैं, जायं तो उसी चीज का दाम तिगुना-चौगुना हो जाता है।

कपड़े धोने की दुकानें, जिन्हें लांडरेट्स कहते हैं, वहां अनेक हैं। अपने सारे कपड़े लेकर दूकान पर चले जायं तो आधे-पौन घंटे में सारे कपड़े मशीन द्वारा धुलकर और सूखकर आपको मिल जायंगे। इस्त्री आपको घर में आकर करनी होगी। इस बीच आप अपना कोई और काम भी करके आ सकते हैं।

एक बार न्यूयार्क में, दुनिया के सबसे ऊंचे भवन एम्पायर स्टेट बिल्डिंग के ऊपर हम लोग गये हुए थे। वहां ग्रामोफोन रेकार्ड बनाने की एक छोटी-सी मशीन रखी हुई थी। बिना किसी की मदद के, आप खुद ही उस मशीन में गाना गाइये या कोई बात कहिये या घरवालों के नाम चिट्ठी या संदेश कह दीजिये। वह सारा-का-सारा एक रिकार्ड पर लिखकर दो मिनट में ही आपको मिल जायगा। आपको तो सिर्फ वहां स्पष्ट भाषा में लिखी हुई हिदायतों को पालन करते जाना है और सूचित बटन को समय-समय पर दबाते रहना है। एक और बटन दबाते ही उस रिकार्ड को रखने के लिए लिफाफा मिल जायगा। आप टिकट आदि लगाकर वहीं से अपने घरवालों के नाम यह रेकार्ड-पत्र पोस्ट कर सकते हैं। इसका दाम भी बहुत मामूली रखा है। कुल दस-बारह मिनट में यह सारा काम हो जाता है। घर पर बच्चे आदि चिट्ठी पाने की बजाय जब ग्रामोफोन पर यह रेकार्ड लगाकर आपकी आवाज सुनेंगे तो उनकी खुशी का अंदाज नहीं लगाया जा सकता।

इसी तरह एक हवाई अड्डे पर अपने-आप फोटो लेने की मशीन लगी
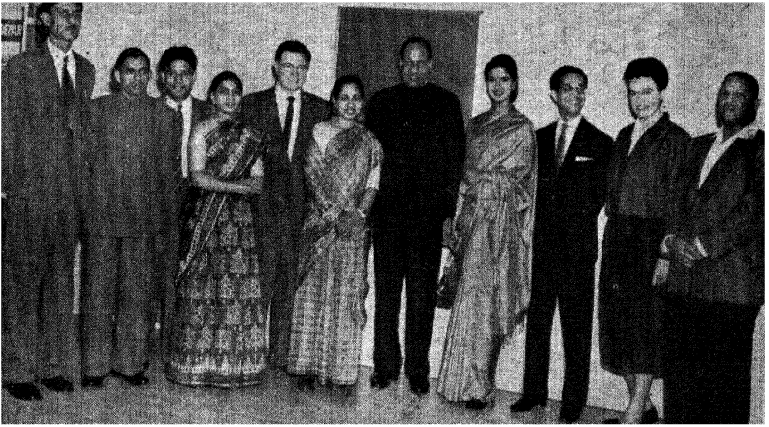
शिष्टमंडल अमरीका पहुंचा

स्वतंत्रता देवी की मूर्ति

'एम्पायर स्टेट बिल्डिंग' :
संसार की सबसे ऊंची इमारत
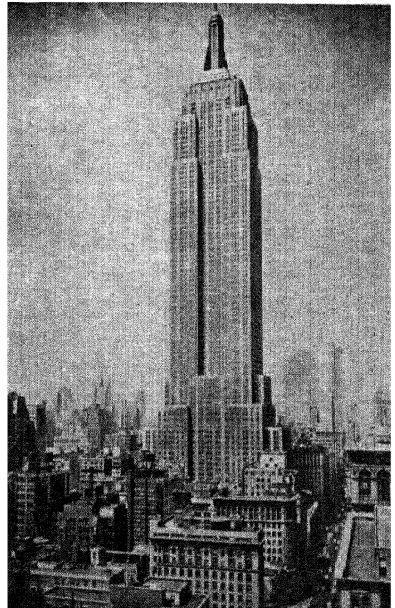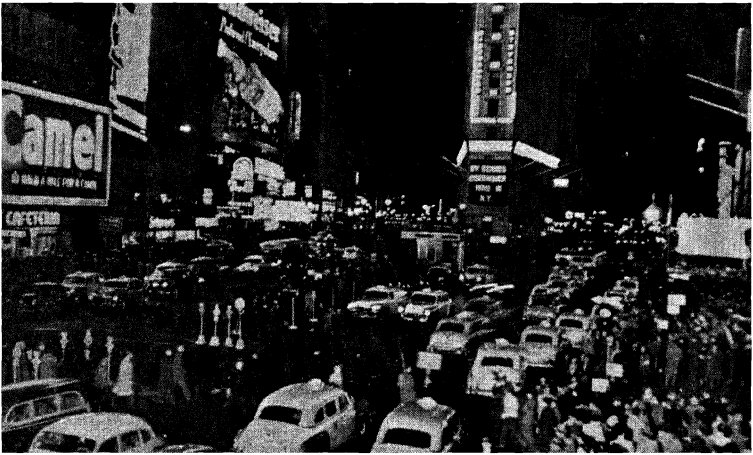
न्यूयार्क का टाइम्स स्क्वायर : रात्रि में

संयुक्त-राष्ट्र-संघ की जनरल असेम्बली की बैठक का एक दृश्य
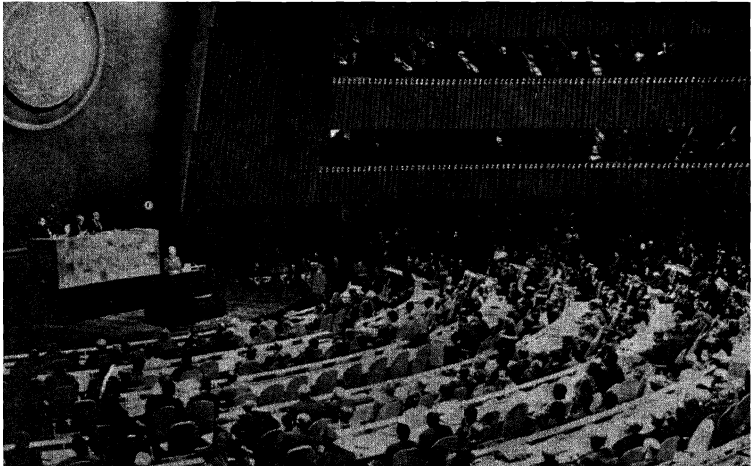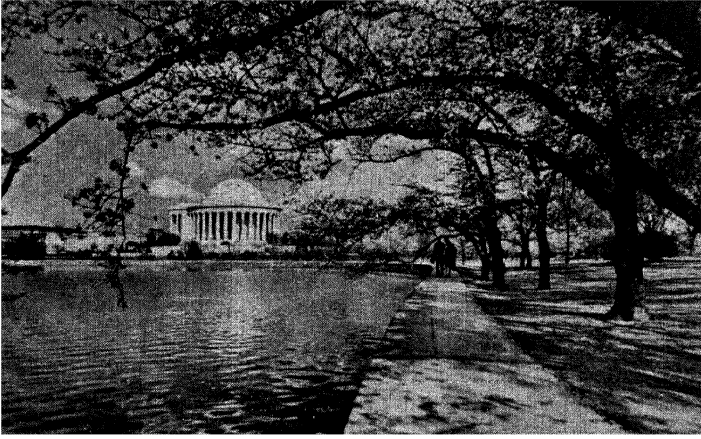
जेफ़रसन मेमोरियल

्हाइट हाउस (राष्ट्रपति भवन)
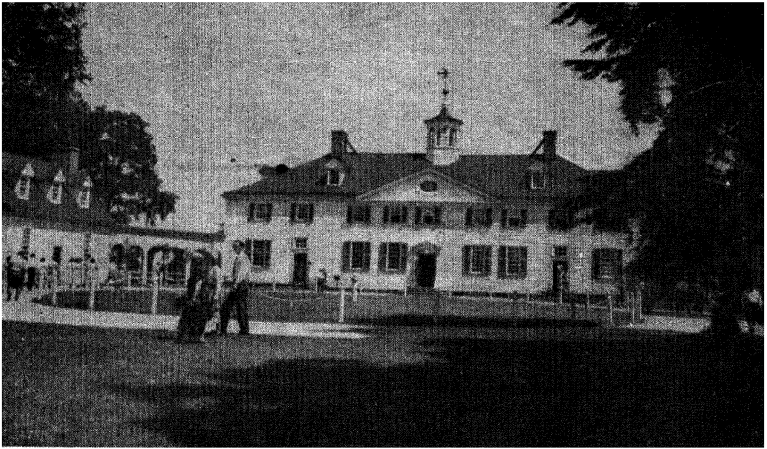
जार्ज वाशिंगटन का पैतृक भवन 'माउंट वर्नन

एडीसन के 'मैनलोपार्क' का एक कक्ष
एडीसन ने बिजली के लैंप का आविष्कार यहीं किया था
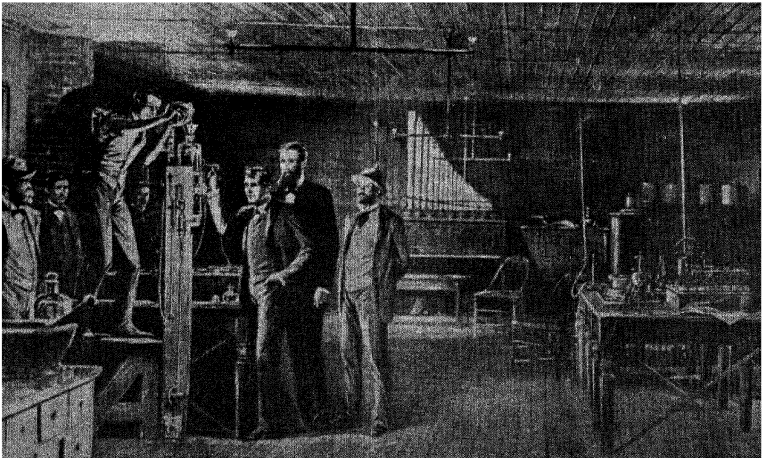
[illegible]-बार्ड स्ट्रीट, सानफ्रांसिस्को
संसार की सबसे अधिक घुमावदार सड़क

टेनेसी-वैली का एक दृश्य
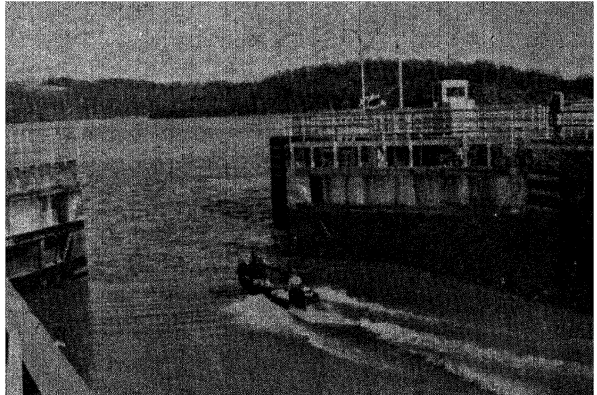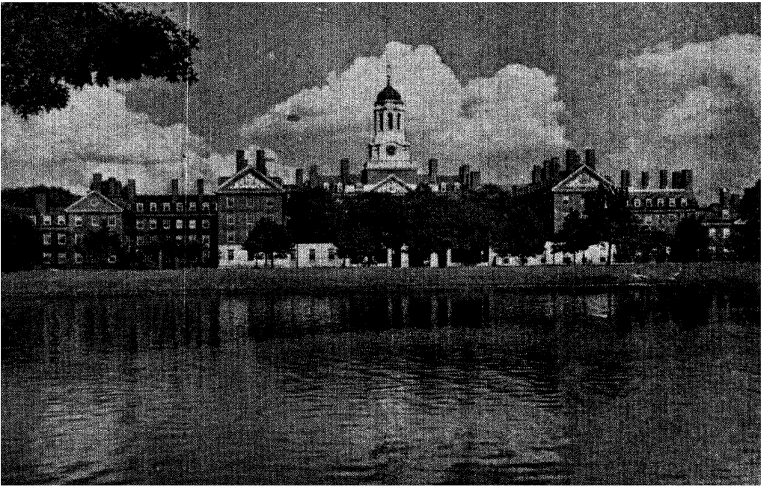
हार्वर्ड विश्वविद्यालय
अमरीका की सबसे पुरानी शिक्षा-संस्था।

मिशीगन विश्वविद्यालय का सभा-भवन
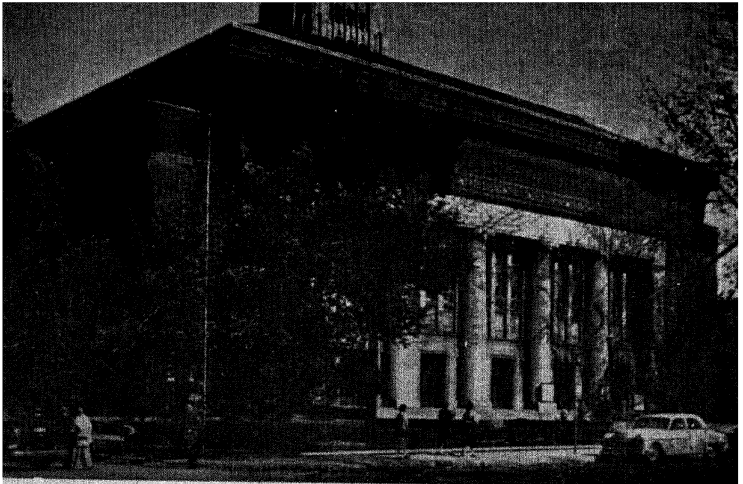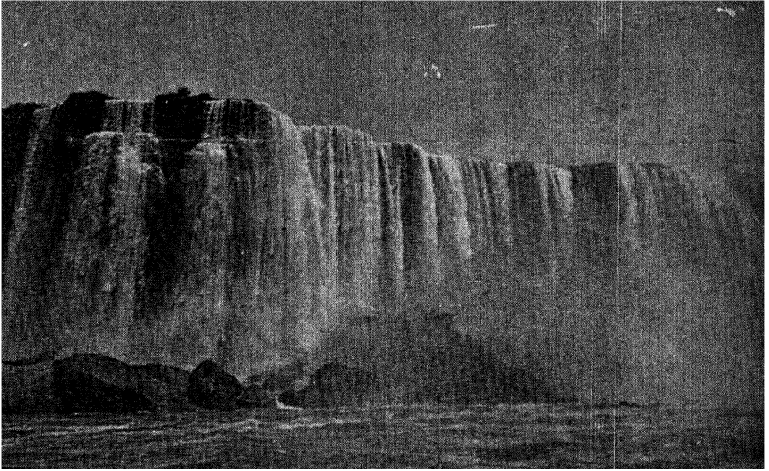
नियाग्रा प्रपात

रेडइंडियन सरदार

डिसनीलैंड की एक घड़ी,
जो संसार के हर देश का
समय बताती है

विदाई की भेंट : लेखक श्री नेलसन राकफैलर को यरवडा चक्र भेंट करते हुए

थी। बटन दबाते ही तुरंत आपका फोटो तैयार हो जाता है। उसकी धुली हुई प्रति एक छोटे-से फ्रेम में जड़कर दो मिनट में ही आपको मिल जाती है। हां, ऐसी ली हुई फोटो बहुत स्पष्ट नहीं आती है।

ऊपर आने-जाने के लिए चलती हुई सीढ़ियां (एसकेलेटर्स) तो आजकल बहुत जगह लग गई हैं। लेकिन डल्लस में, जहां अमरीका का सबसे बड़ा हवाई अड्डा बना है, हमने इससे भी आगे बढ़ी हुई चीज देखी। वहां हवाई अड्डे पर एक जगह से दूसरी जगह जाने में बहुत ऊंचे-नीचे नहीं जाना पड़ता है। फिर भी एक किनारे से दूसरे किनारे तक जाने में काफी फासला तय करना पड़ता है। यात्रियों की सुविधा और उनका समय बचाने के लिए वहां चलते हुए रास्ते बना दिये गए हैं। रास्तों के ऊपर रबर की एक सतह लगा दी है, जो अच्छी रफ्तार से लगातार चलती ही रहती है। आप इसपर खड़े हो जायं तो अपने-आप वह आपको उस पार पहुंचा देगी। यदि आप और जल्दी से पहुंचना चाहें तो उसपर चल भी सकते हैं।

दरवाजे पर पैर रखते ही उसके अपने-आप बन्द हो जाने, खुल जाने का प्रबंध तो बहुत-से मकानों में है। कई जगह हाथ धोने के बाद तौलिये से पोंछने की जरूरत न पड़े, इसके लिए ऐसी मशीन लगा देते हैं, जिसमें से गर्म हवा आती है और कुछ ही क्षण में हाथ सूख जाते हैं। इनमें ऐसी मशीनें भी लगी हैं, जिनमें बटन दबाने की भी जरूरत नहीं पड़ती। आप किसी चीज को न छुएं, सिर्फ मशीन के बीच में अपना हाथ रख दें तो मशीन अपने-आप चालू हो जायगी और निश्चित समय बाद अपने-आप बंद भी हो जायगी।

मोटरों की बत्तियों में भी नये आविष्कार हुए हैं। शहर के बाहर पूरी रफ्तार से जब गाड़ियां चलती हैं तो रोशनी तेज कर दी जाती है। जब सामने से दूसरी गाड़ी आती है तो उसकी रोशनी पड़ते ही इस गाड़ी की रोशनी अपने-आप बदलकर धीमी हो जाती है। आपको कोई बटन दबाने की जरूरत नहीं। गाड़ी की रफ्तार इतनी तेज होती है कि इसके लिए समय भी नहीं मिलता।

इसी तरह अपने गेरेज पर पहुंचने पर उसके दरवाजों पर बत्ती की

रोशनी पड़ने और चक्कों के एक निश्चित स्थान पर पहुंचने पर, वे अपने-आप खुल जाते हैं और मोटर के गेरेज के अंदर जाने पर अपने-आप ही बंद भी हो जाते हैं। ड्राइवर तो लोग रखते नहीं हैं। इसलिए ऐसा न हो तो बारिश में या जब बर्फ गिरती रहती है तब गाड़ी में से उतरकर बाहर आने और गेरेज का दरवाजा खोलने में मोटर के मालिक को बड़ा कष्ट होता है। गेरेज में ही एक और दरवाजा होता है, जिससे आप भीतर-ही-भीतर अपने मकान में प्रवेश कर सकते हैं।

एक जगह ऐसी भी मशीन देखी, जिसपर खड़े हो जाइये तो वह मशीन कुछ इस तरह से हिलती है कि आपके पैरों को व आपके सारे शरीर को अपने-आप मसाज कर देवे। बहुत देर तक खड़े-खड़े या लगातार चलते रहने से पैर दुखने लगते हैं। इस मशीन की सहायता से खून का दौरा ठीक होकर पैरों को बड़ा आराम मिलता है।

एक रोज हम लोग 'नेशनल स्टुडेंट्स एसोसियेशन ऑफ अमरीका' के हार्वर्ड स्थित दफ्तर में बैठे हुए थे। एसोसियेशन के मंत्री के पास टाइपराइटर जैसी एक छोटी-सी मशीन पड़ी थी, जैसे कोई छोटा टेलीप्रिंटर हो। हम लोग वहां बैठे थे तभी बाहर से एक तार आया। वह अपने-आप मशीन पर टाइप हो गया। 'डेस्कफ़ैक्स वेस्टर्न यूनियन कंपनी' के लोग खुद ही, जगह-जगह जाकर जहां तार अधिक आते हैं, ऐसी मशीनें बैठा देते हैं। दफ्तर में बैठे-बैठे ही सीधे इस मशीन के द्वारा अमरीका में कहीं से भी तार प्राप्त किये जा सकते हैं या बाहर भेजे भी जा सकते हैं। इस मशीन का चलन वहां अभी-अभी शुरू हुआ ही है। इससे इसका बहुत प्रचार अभी वहां नहीं हो पाया है। इस प्रकार समय बचाकर आराम पहुंचाना, इन अलादीन के चिरागों का उद्देश्य है, जो अमरीका के जीवन के अनिवार्य अंग हो गये हैं।

: १० :

मजदूर-आंदोलन

अमरीका के मजदूरों की समस्या हमारे यहां से बहुत भिन्न है। वहां उत्पादन की कमी नहीं है। हर तरह के उद्योग, संख्या और परिमाण में बढ़ते ही जा रहे हैं। बेकारी की समस्या करीब-करीब नहीं है। असल में देखा जाय तो वहां मजदूरों की कमी है और इसी वजह से मजदूरी के भाव बढ़ते ही चले जाते हैं। मजदूरी के भाव बढ़ने की वजह से हर वस्तु के दाम बढ़ते हैं और जीवन अधिकाधिक महंगा होता जा रहा है। यह चक्र चलता ही रहता है। मजदूरी बढ़ी और चीजों के दाम बढ़े। चीजों के दाम बढ़े तो फिर मजदूरी बढ़ी। न जाने यह स्पर्धा कब और कहां जाकर रुकेगी।

अन्न और धान का उत्पादन भी उनके देश को जितना चाहिए, उससे ज्यादा होता है। हमारी समस्या यह है कि हमारी पूरी जनसंख्या को किस तरह पूरा अन्न पहुंचायें। उनके सामने समस्या यह है कि अन्न के अधिक उत्पादन का क्या करें?

वहां के मजदूरों का जीवन-स्तर भी हमारे यहां की अपेक्षा बहुत ऊंचा है। वहां के एक मजदूर नेता श्री विलियम केम्सले से बातचीत करने का मौका हमें मिला। वह 'इंटर नेशनल कानफेडरेशन ऑव फ्री ट्रेड यूनियन्स' के न्यूयार्क दफ्तर के डायरेक्टर हैं। इस संस्था में आने के पूर्व वे डिट्रोइट में 'यूनाइटेड ऑटोमोबील वर्कर्स यूनियन' में बड़े महत्वपूर्ण कार्यकर्ता थे। उन्होंने 'इंटरनेशनल कोआपरेशन एडमिनिस्ट्रेशन' में मजदूरों की शिक्षा के सलाहकार की हैसियत से भी काम किया है। उन्होंने कहा कि अमरीका के ट्रेडयूनियन-आंदोलन की पृष्ठभूमि बड़ी उग्र है। १८ वीं सदी के अंतिम दौर में जो मजदूर-संगठन थे, वे गुप्त होते थे। १९ वीं सदी के अंत तक ये संगठन बड़े शक्तिशाली हो गये। युद्ध के

दौरान में अमरीकी मजदूर-संगठनों ने बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया है। युद्ध-जनित प्रभावों और दूसरे देशों के साथ स्थापित संबंधों के कारण अमरीकी मजदूर अपनी अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियों के प्रति बड़ा सजग हो गया है। युद्ध के बाद, जब 'अमरीकन फेडरेशन ऑव लेबर' और 'कांग्रेस ऑव इंडस्ट्रियल आर्गेनाइजेशन' एक संस्था बन गई, तबसे मजदूर-संगठन और भी ज्यादा शक्तिशाली हो गये हैं। लेकिन ये सभी मजदूर-संगठन सर्वथा निर्दोष नहीं हैं। कुछ संगठनों में भ्रष्टाचार फैला हुआ है। किंतु यह भ्रष्टाचार, वस्तुतः, सारे समाज में फैली आचारहीनता का एक अंग मात्र है।

श्री केम्सले ने यह भी बताया कि उनकी सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि वह अपने मजदूरों को यह कैसे समझायें कि वहां के और भारत के मजदूरों के बीच एक अबाध संबंध है। जब भारत के मजदूरों को तकलीफ है तो अमरीका के लोगों को उनकी मदद करनी ही चाहिए। लेकिन यह बात और यह नाता आम मजदूरों को समझाना आसान नहीं। उनका कहना था कि यदि किसी व्यक्ति की स्त्री या बच्चे चुरा लिये जायं तो वह उनको छुड़ाने के लिए जी-जान से लड़ता है। यदि किसीका धंधा चुरा लिया जाय तब तो उसको पूरी ताकत से लड़ना ही चाहिए। धंधा छूट जाना तो स्त्री और बच्चे चुराये जाने से भी बदतर हालत है, क्योंकि धंधा नहीं रहेगा तो अपना और स्त्री, बाल-बच्चों का वह भरण-पोषण नहीं कर सकता और फिर वे उससे अलग हो ही जायंगे। इसलिए उनकी राय में मजदूरों के यूनियनों को मान्यता मिलनी ही चाहिए। यह उनका जन्मजात अधिकार है। अमरीका की औद्योगिक प्रगति में इसी प्रश्न को लेकर अधिक-से-अधिक खून बहा है। वहां अधिकाधिक औद्योगीकरण की वजह से हर चीज इतनी ज्यादा यांत्रिक हो गई है कि ज्यादा-से-ज्यादा उत्पादन पर बड़ा दबाव रहता है। इसकी वजह से लोगों के दिल-व-दिमाग पर बड़ा तनाव रहता है।

डेट्रोइट में हमको जगत्प्रसिद्ध फोर्ड का मोटर का कारखाना देखने का अवसर मिला। उनके यहां ४६ हजार मजदूर काम करते हैं। इनकी रोज की मजदूरी करीब १२-½ लाख डालर होती है। प्रत्येक घंटे की

मजदूरी औसतन करीब डेढ़ लाख डालर से ऊपर होती है।

डेट्रोइट में 'यूनाइटेड ऑटोमोबाइल वर्क् र्स यूनियन' के नेताओं से भी मिलने का मौका हमें मिला। इस यूनियन के ११ लाख २५ हजार सदस्य हैं। फोरमैन, जिसको कि लोगों को नौकरी देने का और हटाने का अधिकार है, को छोड़कर, उसके नीचे के लोगों को ही ये अपनी यूनियन में शामिल करते हैं। सिर्फ क्राइसलर कारखाने के क्लर्क ही इस यूनियन में शामिल हैं, वरना आम तौर पर क्लर्क-वर्ग के लोग अमरीका में बहुत कम परिमाण में संगठित हैं। इनका ख्याल है कि इन लोगों को संगठित करना बहुत कठिन है, क्योंकि उनकी आवश्यकताएं कतई भिन्न हैं।

इस यूनियन के बड़े नेता श्री रायरूथर सिटीजनशिप डिपार्टमेंट के डाइरेक्टर व ए० एफ० एल०-सी० आई० ओ० के उपाध्यक्ष श्री वाल्टर रूथर के भाई हैं। कुछ ही रोज पहले श्री वाल्टर रूथर हिन्दुस्तान आये थे। श्री राय ने कहा कि उनके भाई ने जो देखा उससे उनका मानना है कि भारत को प्रजातांत्रिक शासन-पद्धति में पूरा विश्वास है। हमारे देश को उन्हें हर तरह की आर्थिक मदद देनी चाहिए। उसमें किसी तरह का बंधन नहीं होना चाहिए। प्रकृति उन लोगों की सहायक है और इसलिए उनकी स्थिति दूसरों से अच्छी है। उनका फर्ज हो जाता है कि दूसरों का जीवन-स्तर ऊंचा करने में मदद दें।

आगे चलकर श्री राय ने कहा कि उनके यहां तो, खासकर डेट्रोइट में, समय-समय पर बड़ी बेकारी होती है। बहुत लोगों को कई बार बिना काम-धंधे के गुजर करनी पड़ती है। यह वहां के लोगों के लिए बड़ा ही कठिन है। फिर भी उद्योगों के अधिकाधिक यंत्रीकरण के विरोध में वे नहीं हैं। उनका कहना है कि इस तरह के यंत्रीकरण से जो लाभ होता है वह पूंजी लगानेवालों, मजदूरों और उपभोक्ता या खरीददार इन तीनों में बांट देना चाहिए, या फिर यंत्रीकरण के द्वारा जो मुनाफा उद्योगपतियों को हो, उसपर अधिक टैक्स वसूल कर, जनता के लाभार्थ उसका उपयोग किया जाय। हां, यह जरूर ख्याल रहे कि ऐसे यंत्रीकरण की गति इतनी तेज़ नहीं होनी चाहिए कि एकदम बड़े पैमाने पर मजदूरों में बेकारी फैल जाय। इसमें वे किसी तरह के सरकारी हस्तक्षेप का समर्थन नहीं करेंगे।

चीज बेहतर हो और उसका दाम सस्ता हो, यह सभीके लिए आवश्यक है। यदि मनुष्य के भार को कम कर सकें तो क्यों न करें और उसका लाभ देश के और लोगों के साथ मजदूर भी क्यों न बांटें ? उनका यूनियन इस विचार का बहुत जोरदार पक्षपाती है। उनका कहना था कि इसीलिए वे लोग सारी दुनिया के निश्शस्त्रीकरण के पक्ष में हैं। इस तरह जो बचत होगी, वह स्कूलों व नये कारखाने खोलने, नहरें आदि बनाने में काम आ सकेगी। वह कहते थे कि एक सप्ताह में काम करने के घंटे कम करने की बजाय, उत्पादन बढ़े, इसकी तरफ उनका ज़ोर अधिक है।

उन्होंने यह भी कहा कि फोर्ड के कारखाने में इन दिनों बड़े परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान नवयुवक फोर्ड अपने पूर्वजों से कम कंजरवेटिव हैं। इनके पिता के दाहिने हाथ श्री हेनरी बेनेट मजदूर-विरोधी और दकियानूसी थे। उन्होंने तो यहांतक कहा कि श्री बेनेट अनीति से फोर्ड-कंपनी के नफे का १० प्रतिशत तक खुद के लिए ले जाते थे। फोर्ड के लडके की कुछ नहीं चलने देते थे। बड़े फोर्ड की मृत्यु के बाद उनकी स्त्री ने श्री बेनेट का सारा भंडा फोड़ा। तबतक श्री बेनेट ही सारी फोर्ड-संस्था पर अपना प्रभुत्व जमाये बैठे थे। लेकिन अब वैसी बात नहीं रही। सारा काम ठीक से संभला हुआ है।

श्री राय का मानना था कि अमरीका में मजदूरों की कोई राजनैतिक पार्टी अलग से बनाने की संभावना नहीं है। वहां के मजदूर उसके लिए तैयार नहीं है। वे तो कंजरवेटिव या लिबरल पार्टी को ही ज्यादा पसंद करते हैं। वहां की डेमोक्रटिक पार्टी, जितना ये चाहते हैं, उतनी प्रगतिशील नहीं है। फिर भी उनके मतलब के लिए काफी है। वह कहते थे कि डेमोक्रेटिक पार्टी पर दक्षिण के लोगों का बहुत असर है, वह उचित नहीं। दक्षिण के लोग जनता में समानता के अधिकार के मामलों को लेकर बहुत पिछड़े हुए हैं। कई दूसरे पिछड़े हुए मामलों में दक्षिण के ये डेमोक्रेटिक लोग भी रिपब्लिकनों के साथ अपना मत देते हैं। वे लोग अपनी यूनियन के सदस्यों को चुनाव के समय, नीचे की सतह पर, अपनी पसंदगी की पार्टी को अपना मत देवें, इसके लिए प्रोत्साहित करते हैं।

वे लोग यह दावा करते हैं कि उनका संगठन और आंदोलन आम

जनता की भलाई के लिए है। वे मानते हैं कि अच्छा वेतन और अधिक काम दोनों साथ-साथ चलने चाहिए। यूनियन और मालिक दोनों के विशेषज्ञ साथ मिलकर तय करते हैं कि हर आदमी को कितना काम करना आवश्यक है। उस हिसाब से काम लिया जाता है। ये लोग मजदूरों के कम या खराब काम करने के पक्ष में नहीं हैं।

उनके देश में वर्कर्स कौंसिल या इस तरह की कमेटी नहीं है, जो कि मजदूरों की तरफ से व्यवस्थापकों के साथ बैठकर व्यवस्था करने में हिस्सा ले। इसके लिए वहां के मजदूरों में कुछ मांग भी नहीं है। वे लोग अपने कारखाने की नीति क्या हो, इसका निर्णय करने या व्यवस्था में सीधा हिस्सा लेने के इच्छुक नहीं है। उन लोगों का ज्यादा ध्यान तो अपनी मजदूरी करने की हालत सुधारने, छुट्टियां अधिक मिलने, अधिक सुविधाएं प्राप्त करने में लगा रहता है। यदि उत्पादन कम होगा तो आदमियों को काम करना ही पड़ेगा। यह सिद्धांत उनको भी मान्य हो गया है। इसलिए कितने आदमी कम किये गए, इस बारे में अब उन्हें विशेष दिलचस्पी नहीं रही है।

जिन आदमियों को थोड़े समय के लिए हटाया जाता है, उनको बेकारी के दिनों में अपने वेतन का ६५ प्रतिशत, एक खास कोष में से, मिलता रहता है। हर व्यक्ति काम करने के हर घंटे की मजदूरी का ५ प्रतिशत इस कोष में जमा करता है। करीब ४० प्रतिशत सरकार के बेकारी दूर करने के कोष में से आता है।

यंत्रीकरण की वजह से अमरीका के उत्पादन में करीब ढाई प्रतिशत की वृद्धि हर साल होती है। इसी हिसाब से करीब उतनी ही उनकी मजदूरी बढ़ती है।

ए० एफ० एल० सी० आई० ओ० के मजदूर नेता श्री हैरी पोलक ने हमें मजदूर-आंदोलन का कुछ दूसरा ही चित्र दिया। उन्होंने कहा कि उनके यहां का मजदूर-आंदोलन बड़ा जानदार, संगठित और शक्तिशाली है। उसमें का भ्रष्टाचार उन्होंने बहुत-कुछ मिटा दिया है। अब उनका ध्यान खास करके क्लर्कवर्ग के लोगों को संगठित करने में है। वे लोग किसी पार्टी के साथ जुड़े हुए नहीं हैं। वे पार्टियों के बारे में व उनके प्रत्येक नुमाइंदे के बारे में, उनके वचनों व उनके कार्यों के उपर से अपनी राय बनाते

हैं। उनके मजदूरों में वर्ग-भेद की भावना अब नहीं है। उद्योगपतियों को अब वे अपना पड़ोसी मानते हैं। वे लोग वहां की पार्लामेंट में जाने को बहुत उत्सुक नहीं हैं। वहां के मजदूर अब अपनी अंतर्राष्ट्रीय जिम्मेदारियों के प्रति अधिक जागरूक हो रहे हैं। उनकी राय अब दूसरे देशों को आर्थिक मदद देने के पक्ष में हो रही है। यदि अमरीका अपनी वैज्ञानिक उन्नति के कारण थोड़ी ही लागत में अधिक उत्पादन करने में समर्थ हो गया है तो उसका फज है कि पिछड़े हुए देशों के विकास में और अधिक सहयोग दे।

श्री पोलक हाल ही में भारत के दौरे से लौटे थे। भारत के संबंध में उन्होंने कहा कि यहां प्रजातांत्रिक ढंग से योजनाएं बनाई व कार्यान्वित की जा रही हैं। यह प्रयोग बड़ा सराहनीय है। अमरीका का मजदूर सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए और विशेषतः रंग के आधार पर बरते जानेवाले भेद-भावों को दूर करने के लिए चलाये गए आंदोलनों में आगे बढ़कर हिस्सा लेता रहा है। संगठित मजदूर-वर्ग ने आमतौर पर डेमोक्रेटिक पार्टी को अपना समर्थन दिया है। किंतु उसने हर प्रश्न को उसके अपने गुणों के अनुसार देखा-परखा है। यह संभव नहीं प्रतीत होता कि अमरीकी मजदूर कोई अपनी विशेष राजनैतिक पार्टी बना लेगा, क्योंकि इस देश में, कोई सीधी और साफ वर्ग-चेतना नहीं है। इसके अलावा बिना किसी अलग पार्टी के भी वहां का मजदूर अपनी सारी समस्याएं हल करवा लेने में समर्थ है।

जब हमने उनसे मालिक-मजदूर के मिले-जुले प्रबंध के बारे में उनकी राय पूछी, तो उन्होंने कहा कि उनके देश में इस तरह के प्रबंध के पक्ष को समर्थन प्राप्त नहीं है। किंतु लाभ के वितरण के प्रयोगों को कुछ सफलता मिली है। हां, भारत के लिए ऐसी योजनाएं उचित हो सकती हैं। अमरीका का मजदूर इस तरह की योजनाओं के प्रति आंशकित है, क्योंकि पहले ऐसा प्रबंध मालिक लोग उनके वेतन की दरें कम करने के लिए ही किया करते थे। उनके सामने एक बड़ी समस्या यह आ खड़ी हुई है कि आम मजदूर जीवन के अन्य पहलुओं की ओर बहुत-कुछ उदासीन रहता है। ए० एफ० एल० सी० आई० ओ० इस स्थिति को सुधारने के लिए मजदूर-शिक्षा और जन-सेवा के कार्यक्रम आयोजित कर रही है।

शिकागो में इनलैंड स्टील कंपनी की मजदूर-यूनियन के नेताओं से भी

हम मिले। यह अमरीका का तीसरा सबसे बड़ा कारखाना माना जाता है। इस क्षेत्र में लोहे के कारखानों में काम करनेवाले १ लाख ५५ हजार मजदूर इस यूनियन के सदस्य हैं। उन लोगों को यह परवा नहीं है कि उनकी यूनियन को उनकी कंपनी मान्यता दे या न दे। उनके यहां यूनियन के खिलाफ बहुत कम लोग हैं। उनकी सभा में बहुत कम लोग आते हैं। करीब एक या दो प्रतिशत सदस्य भी मीटिंग में मुश्किल से आते हैं। हां, जब किसी बात को लेकर असंतोष फैल जाता है तब उपस्थिति एकदम बढ़ जाती है। कंपनी के नौकरों से जो कंट्राक्ट होते हैं, वे सारे यूनियन की मार्फत ही होते हैं।

करीब सौ-सवा सौ मील की दूरी से लोग रोज काम करने आते हैं। इनलैंड स्टील में करीब १५,५०० मजदूर हैं, जिनमें करीब ७५ प्रतिशत लोगों के पास अपनी खुद की मोटरें हैं। इनकी मांगों में मुख्य मांग होती है अधिक कमाई व काम की सुविधाएं। वे चाहते हैं कि सप्ताह में सिर्फ ४० घंटे ही काम करें। उनकी मान्यता है कि धीरे-धीरे काम के घंटे कम होकर ३५ से ३० घंटे तक ही रह जाने चाहिए। यदि मजदूरी भी साथ-ही-साथ कम हो तो शायद कंपनी भी इस प्रस्ताव को मान ले। लेकिन इस बात पर उनमें मतभेद है। ये लोग भी यंत्रीकरण के विरोधी नहीं है, लेकिन चाहते हैं कि उसका फायदा सबको मिले। उनका मानना है कि अमरीका के लोगों की जेब में यदि पैसे हों तो आवश्यकता हो या न हो वे चीज़ें जरूर खरीदते रहेंगे। बहुत बार देखा-देखी भी चीज़ें खरीद लेते हैं।

उनकी यूनियन का शुल्क पांच डालर प्रति माह है। मजदूरों से यह जमा करना आसान काम नहीं है। जब हम वहां थे उस साल उनकी यूनियन ने करीब ६८० शिकायतें अपने सदस्यों की तरफ से मालिकों के सामने रक्खी थीं। आरबिट्रेशन का निर्णय मिलने में करीब दस माह लग जाते हैं। करीब ४० प्रतिशत शिकायतों का फैसला मजदूरों के पक्ष में होता है। इस बारे में राष्ट्रीय अनुपात मजदूरों के पक्ष में सिर्फ १५ प्रतिशत का ही है। इससे यह जाहिर होता है कि इनकी यूनियन काफी संगठित है और जिम्मेदार भी। अपने सदस्यों की मांग या शिकायत के औचित्य को समझकर ही वे उसके लिए संघर्ष करती हैं।

: ११ :

नीग्रो और उनकी समस्या

भारत में अमरीका की रंग-नीति के संबंध में बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। हम सिर्फ अखबारी प्रचार के कारण, लिटिल रॉक या छुटपुट हुई हिंसात्मक कार्यवाहियों के आधार पर ही सारे देश के बारे में अपनी धारणा बना लेते हैं। हमने अपने दो महीनों के प्रवास में एक भी हिंसात्मक घटना न देखी, न सुनी ही। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि समस्या है ही नहीं। बल्कि सत्य तो यह है कि समस्या उससे कहीं ज्यादा गहरी और उलझी हुई है, जितनी कि हम यहां उसे समझते हैं। इस रंग की समस्या का स्वरूप कुछ इतना गहन हो गया है कि इसे समूल नष्ट होने में काफी समय लगेगा। हम इतना अवश्य कहेंगे कि इस दिशा में भी बड़ी प्रगति हुई है। हम अनेक नीग्रो नेताओं से भी मिले। उन्होंने भी यही राय जाहिर की थी। सुप्रीम कोर्ट के अनेक निर्णयों और जनमत ने अनेक राज्यों को अपना रवैया बदलने को मजबूर किया है। अनेक गिरजाघरों ने भी अपनी जिम्मेदारी महसूस की है और भेद-भाव के विरोध में वे काफी बुलंदी से आवाज उठाने लगे हैं।

अमरीका की रंग-समस्या हमारी अपनी अछूत-समस्या से बहुत मिलती-जुलती है। किंतु इनमें भी एक मौलिक अंतर तो है ही। हमारी समस्या केवल सामाजिक और धार्मिक स्तरों पर रही है। देश के सरकारी कानून सब वर्गों के लिए एक-से ही रहे हैं। अमरीका के अनेक प्रांतों के बहुत-से कानून भेद-भाव के आधार पर ही निर्मित हैं।

वाशिंगटन में सिविल राइट्स कमीशन के स्टाफ डायरेक्टर श्री गोर्डन टिफनी से मिलने का सुअवसर हमें मिला था। उन्होंने इस छः सदस्यीय कमीशन के कार्यों के संबंध में हमें बताया। ये सारे सदस्य वहां के राष्ट्र-पति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। किसी एक ही पार्टी को तीन से

ज्यादा का प्रतिनिधत्व नहीं मिलता है। श्रमरीका का कोई भी नागरिक, जिसके विरुद्ध रंग, जाति, धर्म, राष्ट्रीयता के श्राधार पर किसी भी किस्म का श्रन्याय या भेदभाव हुश्रा हो, या जो श्रपने मताधिकार के संबंध में कुछ कहना चाहता हो, इस कमीशन को श्रपनी शिकायत पहुंचा सकता है। कमीशन का मुख्य काम ही यह है कि इस बात की जानकारी हासिल करे कि न्याय का संरक्षण हरेक को समान रूप से प्राप्त है या नहीं। श्रभी कुछ दिनों से मकानों के संबंध में बरते जानेवाले भेद-भाव का मसला भी कमीशन ने श्रपने हाथ में लिया है। श्री गोर्डन ने विश्वास प्रकट किया कि देश से सारे भेद-भाव शीघ्रता से समाप्त होते जा रहे हैं। इस श्रोर देश की श्रनेक सामाजिक, धार्मिक संस्थाश्रों श्रौर राजनैतिक दलों ने जो योग दान दिया है, वह बड़ा उत्साहवर्द्धक है।

हमारे श्रमरीका के दौरे में न्यू श्रार्लियन्स जाने का कार्यक्रम खास इस दृष्टि से रखा गया था कि श्रमरीका की जो नीग्रो-समस्या है, उसके बारे में हम व्यक्तिगत रूप से जानकारी हासिल कर सकें। न्यू श्रार्लियन्स श्रमरीका के एकदम दक्षिण में स्थित बंदरगाह है श्रौर नीग्रो-समस्या यहां श्रौर इसके इर्द-गिर्द श्रपेक्षाकृत श्रधिक है। चूंकि हम लोग श्रमरीका में यात्री होकर नहीं, बल्कि वहां की युवक-संस्था के मेहमान होकर पहुंचे थे, इसलिए हमारे मेजवानों को स्वाभाविक तौर से यह चिंता थी कि हमारे रंग की वजह से नीग्रो समझकर कहीं हमारा श्रपमान न हो। जब हम दक्षिण की श्रोर जाने लगे तब उन्होंने पहले से हमें सूचित कर दिया था कि गलती से हम लोगों को किसी होटल में ठहरने, खाने-पीने या बस में चढ़ने से मना कर दिया जाय तो हम बुरा न मानें।

हमें श्रपने सारे श्रमरीकी दौरे में ऐसी दुर्घटना का सामना कहीं नहीं करना पड़ा। हमारे साथ साड़ी पहने भारतीय महिलाएं भी थीं, इसलिए भी किसी तरह की गलतफहमी की संभावना नहीं थी।

न्यू श्रार्लियन्स में एक दिन हमने डिलार्ड यूनिवर्सिटी, जो कि सारी दुनिया की नीग्रो यूनिवर्सिटियों में प्रसिद्ध है, देखी। वहां के समाजशास्त्र के नामी प्राध्यापक डा० डी० सी० थाम्पसन ने हमें बताया कि श्रमरीका के दो-तिहाई नीग्रो दक्षिण में रहते हैं। १६२० में करीब ६७ प्रतिशत नीग्रो

प्लांटेशंस में काम करते थे। तबसे आज तक बहुत-से नीग्रो उत्तर में जाकर बस गये हैं। फिर भी उत्तर में नीग्रो की बस्ती बहुत कम होने से वहां नीग्रो-समस्या कोई खास समस्या नहीं है और इसलिए वहां उस बारे में कुछ खास कानून भी नहीं बने।

सन् १९५४ के बाद गोरों की तरफ से दक्षिण में नीग्रो लोगों पर करीब ४०० हिंसा की घटनाएं हुईं। अब जमाना आ गया है कि दक्षिण के गोरों ने कम-से-कम नीग्रो की कठिनाइयां सुनना और समझना तो शुरू कर दिया है। साथ-ही-साथ बहुत-से गोरों का, जो कि नीग्रो से गुलामों के तौर पर काम लेने के आदी हो गये थे, विरोध भी बढ़ा है। १९५४ के बाद ही दक्षिण के अलग-अलग प्रांतों में करीब २०० से भी अधिक कानून बने हैं, जिन्होंने गोरों और नीग्रो के भेद-भाव को और भी मजबूत किया है। इसके बावजूद डा०थाम्पसन, जोकि खुद एक प्रबुद्ध नीग्रो हैं,का मानना था कि आज अमरीका में नीग्रो की इतनी इज्जत हुई है, जितनी पहले कभी नहीं थी। उत्तर के प्रदेशों में नीग्रो की बस्ती ज्यादा न होने से वहां इस समस्या ने इतना उग्र रूप नहीं धारण किया। वहां के लोगों की सहानुभूति नीग्रो के लिए अधिक रही है। उन्हींके खास प्रयत्नों से सेग्रीगेशन (अंतर कायम रखने का कानून) का अंत करने के लिए फेडरल सरकार ने कानून पास किया। इस कानून का असर देशभर में पड़ रहा है। इस समस्या के धीरे-धीरे हल करने में उसकी पूरी मदद मिल रही है।

डिलार्ड यूनिवर्सिटी में ९५० विद्यार्थी हैं, जिनमें ६० प्रतिशत लड़कियां हैं। अभी तक इस यूनिवर्सिटी में सिर्फ नीग्रो ही आते थे, लेकिन इस वर्ष पहली बार दो-तीन गोरे भी भर्ती हुए हैं।

न्यू आर्लियन्स में गोरों की भी एक अलग यूनिवर्सिटी है—टुलेन। वहां भी हम लोगों ने आधा दिन बिताया। वहां का वातावरण कोई विशेष नहीं लगा। हमें जितने उत्साह और सहानुभूति से डिलार्ड यूनिवर्सिटी में बुलाया गया वैसी कोई बात हमें टुलेन यूनिवर्सिटी में नहीं लगी। डिलार्ड में तो हमसे वहां के ऊंचे-से-ऊंचे प्राध्यापकों ने बड़ी गंभीरतापूर्वक नीग्रो-समस्या पर चर्चा की। हमारे सारे सवालों का जवाब दिया। साथ ही वहां के विद्यार्थियों ने भी भारत के बारे में अनेक सवाल पूछे। हमको विद्यार्थियों से मिल-

कर उनसे अपने विचार आदान-प्रदान करने का अवसर मिला। इस तरह का कोई प्रयत्न करने की आवश्यकता ही टुलेनवालों को प्रतीत नहीं हुई। उनको शायद अपनी सफेद चमड़ी का रौब रहा होगा। ऐसा अनुभव अमरीका में हमें और कहीं नहीं मिला। डिलार्डवालों को हमसे ज्यादा निकटता अनुभव हुई, ऐसा प्रतीत हुआ। हमें भी उनके प्रति अधिक सद्भावना रही।

जब हम अमरीका के उत्तर में मसाचुसेट्स प्रान्त के बोस्टन शहर में आये, तो वहां के प्रांतीय 'कमीशन अगेंस्ट डिस्क्रिमिनेशन' से मिलने का भी अवसर मिला। यह प्रांतीय सरकार द्वारा बनाई हुई संस्था है। हमें यह जानकर खुशी हुई कि इस कमीशन के सभापति श्री केनसिंगटन, जो कि खुद एक नीग्रो नवयुवक हैं, हमारी अंतर्राष्ट्रीय संस्था 'वर्ल्ड असेंबली आव यूथ' के सदस्य रह चुके हैं। वह उसकी सिंगापुर में हुई कान्फ्रेंस में प्रतिनिधि के रूप में भाग भी ले चुके हैं। वहां से लौटते समय भारत भी पधारे थे। शुरू में हम लोगों ने कमीशन की मीटिंग में दर्शक के रूप में हिस्सा लिया। बाद में उनसे चर्चा भी हुई। वहां की प्रांतीय सरकार ने यह कानून बनाया है कि कोई भी मालिक, किसीको अपने कारखाने में काम देने के पहले, उससे उसके धर्म, जाति और रंग के बारे में नहीं पूछ सकता। नौकरी पर रखने के बाद वह जो चाहे पूछ सकता है। तनख्वाह के बढ़ाने में इन बातों के आधार पर किसी तरह का फर्क नहीं किया जा सकता। हमारी उपस्थिति में जब कमीशन के सामने यह सवाल आया कि सरकार के सुरक्षा-विभाग के लिए भी यह शर्त लागू है या नहीं तो कमीशन ने तय किया कि उसके लिए भी यह शर्त लागू होनी चाहिए। इस प्रांत में इस तरह का कोई विज्ञापन अखबारों में नहीं छप सकता कि सिर्फ गोरे ही नौकरी के लिए आवेदन-पत्र भेजें। इस कमीशन को पूरा कानूनी अख्तियार है और अपने निर्णयों को ये कानून के द्वारा मनवा सकते हैं। लेकिन इनके तेरह वर्ष के जीवन-काल में इनको कभी भी कचहरी में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ी, चूंकि इनके पास कानूनी अधिकार हैं, इनकी बात मालिक व मजदूर दोनों ही आसानी से मान लेते हैं।

दूसरा सवाल कमीशन के सामने एक नीग्रो लड़की का आया। इसने

शिकायत की थी कि एक कारखाने में उसके प्रति भेद-भाव किया गया। इसलिए उसने वहां से इस्तीफा दे दिया था और कमीशन के पास शिकायत की थी। कमीशन को उसकी शिकायत जंची और उन्होंने कारखाने के व्यवस्थापकों का ध्यान इसकी ओर खींचा। उन्होंने अपनी गलती मंजूर की और इस तरह का भेद-भाव जिस मैनेजर ने किया था, उसको हटाने का तय किया।

रंग को लेकर छोटी-से-छोटी बात में भी कहीं भेद-भाव किया जाय तो हरेक व्यक्ति को सीधे इस कमीशन के पास अपनी शिकायत लेकर पहुंचने का अधिकार है। यह कमीशन सीधे मालिकों से या गलती करनेवाले अन्य लोगों से संपर्क स्थापित कर, ऐसे मामलों को बिना किसी विशेष कठिनाई के सुलझा लेता है। कानूनी अधिकार उनके पास है, इसकी जानकारी ही इस समस्या को हल करने में काफी मददगार साबित हुई है।

इस प्रांत में धर्म और रंग के अलावा उम्र को लेकर भी किसी तरह का भेदभाव नहीं किया जा सकता। हर कारखाने का मालिक चाहता है कि उसको मजबूत, फुर्तीले नौजवान काम करने को मिलें। फिर ज्यादा उम्रवाले अधेड़ व वृद्ध लोगों का काम कैसे चले? जब यह समस्या उनके सामने आई तो अंत में जाकर उनको तय करना पड़ा कि उम्र का भी भेद-भाव नहीं किया जा सकता।

कमीशन के सदस्यों का मानना था कि दक्षिण में जो बच्चों की शिक्षा होती है, उसमें यदि गोरों और नीग्रो की पढ़ाई साथ-साथ हो सके तो यह समस्या धीरे-धीरे आसानी से हल हो जायगी। उत्तर के शहरों में कहीं-कहीं नीग्रों को खास-खास क्षेत्रों में घर बनाने की इजाजत नहीं थी। अब यह इजाजत मिल रही है कि वे जहां चाहें अपना घर बना लें। वे मानते हैं कि इस तरह के कानूनों से सारी समस्या तो हल नहीं हो सकती, लेकिन इसका शैक्षणिक और भावनात्मक महत्व बहुत है। इसके बगैर असली प्रगति होने में कई तरह की रुकावटें आती है।

न्यूयार्क स्टेट की भेद-भाव-निरोधक समिति से भी हम मिले। उसके सभापति श्री कार्टर भी एक नीग्रो है। वह बड़े विद्वान और साधु पुरुष लगे। उन्होंने भारत की नीतियों की बड़ी सराहना की और कहा

कि संघर्षों से भरी हुई दुनिया में भारत का स्थान बहुत ऊंचा है । उन्होंने कहा कि मानव-जाति का इतिहास तो भारत, चीन और अफ्रीका में लिखा जा रहा है । दास-प्रथा के प्रश्न पर विचार करते हुए श्री कार्टर ने कहा, "अमरीका के नैतिक, आत्मिक और बौद्धिक नेता मानव के नैतिक मूल्यांकन की दिशा में बहुत पीछे रह गये हैं । किंतु स्थिति अब सुधार पर है ।"

संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रधान कार्यालय यहां होने के कारण दुनिया के हर भाग से हर जाति, वर्ग, रंग और वर्ग के लोग यहां आते हैं, इसलिए नीग्रो-समस्या के हल की दिशा में बड़ा प्रभाव पड़ा है । स्वयं नीग्रो-जाति खुद भी बहुत जागृत हो गई है और एक आत्मिक और नैतिक जागरण के युग का दौर शुरू हो गया है । अमरीकी सरकार भी नीग्रो गायक खिलाड़ी और सांस्कृतिक प्रतिनिधियों को दुनिया के दूसरे देशों में भेज रही है । यह सब कदम सही रास्ते की ओर उठ रहे हैं ।

श्री कार्टर ने यह भी कहा, "अमरीका का नैतिक नेतृत्व कमजोर होने का यह भी कारण हुआ कि वह मजदूरों को कम वेतन देने और गोरों को अधिक सम्मान देने के सिद्धांतों को मान्यता देता है । हमारे विद्वानों और विश्वविद्यालयों ने भी इस सिद्धांत को मान लिया था । यह हमारी कमजोरी थी । परिस्थिति सुधर रही है । हमारे यहां की नैतिक व आध्यात्मिक प्रगति बहुत धीमी है । फिर भी मार्क्सवाद के लिए यहां कोई गुंजाइश नहीं । बड़े-बड़े बैरिस्टर व वकीलों ने कहा है कि सुप्रीम-कोर्ट ने भेद-भाव के खिलाफ जो कानून बनाये हैं, वे अमरीका के विधान के अनुसार सही नहीं हैं । उनका मानना है कि यह फैसला सिर्फ कानून पर आधारित नहीं है । इसपर राजनैतिक कारणों का अधिक असर पड़ा है और यह अमरीका की सरकार की नीति पर आधारित है ।"

हमें डिलार्ड यूनिवर्सिटी में तथा न्यूयार्क स्टेट की भेद-भाव-निरोधक समिति के सभापति श्री कार्टर ने भी ज़ोर देकर कहा कि अमरीका के नीग्रो महात्मा गांधी के बहुत आभारी और अनुगृहीत हैं । उनके विचारों का रेवरेंड मार्टिन लूथर किंग व अन्य नीग्रो नेताओं पर बहुत असर पड़ा है। इसी वजह से उनका आंदोलन अहिंसा के जरिए सफलता की तरफ अग्र-सर हो रहा है । इसका मुख्य लाभ नीग्रो-जाति के लिए यह हुआ कि उनका

खुद का आध्यात्मिक और नैतिक पुनरुद्धार हो रहा है, उनमें आत्म-विश्वास का संचार हो रहा है।

जब हम अमरीका में थे, मोटर बनाने के कारखानों की राजधानी डेट्रोइट में करीब बीस हजार गोरे व नीग्रो बेकार थे। वहां की फेयर प्रैक्टीसेज़ कमेटी (किसीके प्रति अन्याय न हो यह देखनेवाली समिति) यह देखती है कि मजदूर और उनके यूनियन में जातीयता और रंग के आधार पर किसी तरह का भेद-भाव न हो। वे लोग हर तरह के भेद-भाव का बड़े ज़ोर से मुकाबला करते हैं। डेट्रोइट में करीब पंद्रह वर्ष पहले जातीय दंगे हुए थे। इस बारे में मजदूर-यूनियन के और मजदूरों के तगड़े विचारों की वजह से इन दंगों का वहां के लोगों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा और दंगे जोर नहीं पकड़ सके।

एनआरबर यूनिवर्सिटी के संचालक-मंडल से जब हम मिले तब उन्होंने नीग्रो-समस्या के बारे में हमें बताया कि यद्यपि इस बारे में सुप्रीम कोर्ट का निर्णय स्पष्ट है फिर भी उनकी समझ से अभी भी भेद-भाव बहुत हद तक कायम है। उनके प्रांत मिशिगन में भी कुछ हद तक यह बाकी है। लेकिन धीरे-धीरे कम हो रहा है। नीग्रो और गोरे डाक्टरों, अध्यापकों, वकीलों, व पढ़े-लिखे लोगों में इस तरह के भेद-भाव बहुत कम रह गये हैं। यह सवाल तो विशेषकर अशिक्षित गरीब नीग्रो के लिए रह गया है। करीब डेढ़ करोड़ नीग्रो में से दस लाख ऐसे रह गये होंगे, जोकि गोरों में मिल-जुल नहीं पाये हैं।

मेरा व्यक्तिगत ख्याल है कि अमरीका में नीग्रो-समस्या धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूप से, हल होती जा रही है। वहां अधिकतर गोरों ने भी यह मान लिया है कि मनुष्य-मनुष्य के बीच इस तरह के भेद-भाव करना ठीक नहीं। उत्तर में रहनेवाले अमरीकियों का मूलभूत दृष्टिकोण व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ज़ोरों से पक्ष में होने की वजह से उन लोगों ने जल्दी ही यह बात ग्रहण कर ली है कि उनको नीग्रो के साथ भेद-भाव का या पशुओं जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए। दक्षिण में जरूर ऐसे बहुत-से गोरे हैं, जोकि सिद्धांत के रूप में भेद-भाव को कायम रखने के जोरदार समर्थक हैं। वे मानते हैं कि यह अन्तर तो भगवान का बनाया हुआ है और इसका

कायम रहना मनुष्य-जाति के हित में है। हमारे यहां के सनातनी विचार-वाले लोगों की भांति ही वे भी हैं। जिस तरह हमारे यहां की हरिजन-समस्या ने विकट रूप धारण कर लिया था, उसी तरह उनके यहां भी यह समस्या है। इसका ऐतिहासिक कारण भी है। शुरू-शुरू में उन लोगों को सस्ते और मेहनती मजदूर चाहिए थे। मेहनत करके दक्षिण अमरीका और अफ्रीका से उन लोगों ने नीग्रो को लाकर अमरीका में बसाया और उनसे काम कराने के आदी हो गये। हमारे यहां हरिजनों और अछूतों को कानून से पूरी स्वतंत्रता और अधिकार मिल गये हैं, फिर भी समस्या का पूरा हल नहीं हुआ है और समाज में भेद-भाव मौजूद है। अमरीका की हालत भी कुछ-कुछ उसी तरह की समझनी चाहिए।

अमरीका के बौद्धिक वर्ग में तो मानसिक क्रांति हो गई है। उसका बाहरी स्वरूप कानून के रूप में आ गया है। अब धीरे-धीरे यह दैनिक जीवन में भी व्याप्त हो जायगा, इसमें मुझे कोई शक नहीं। अमरीका की नीग्रो-समस्या को हम लोग जो महत्व देते है, उसकी जितनी चर्चा करते हैं, उसका उतना बड़ा और महत्व का स्वरूप मुझे नहीं लगता। यह सामाजिक परि-वर्तन है, जोकि समय के अनुसार बदलता है, लेकिन इसकी गति हमेशा धीमी ही रहेगी।

: १२ :

सामाजिक जीवन में सेवा-भावना

अमरीका में जहां-जहां भी हम लोग गये, एक चीज हमें खासतौर से दिखाई दी। लोग आमतौर पर बड़े सज्जन और भले हैं। किसीकी भी तकलीफ में मदद करने के लिए वे तैयार रहते हैं। यद्यपि उनको सारे काम अपने हाथों ही करने पड़ते हैं, फिर भी समाज-सेवा के लिए भी खुशी से तैयार रहते हैं। जीवन इतना व्यस्त होता है कि रात-दिन मशीन की तरह उनका कार्यक्रम बना रहता है। उसमें से यदि थोड़ा समय मिल गया तो किसी भी तरह की समाज-सेवा करने में समय बिताने की उनकी ख्वाहिश रहती है। उनको खाली बैठना या बिना किसी काम-काज के रहना सुहाता ही नहीं। मशीन के समान कुछ-न-कुछ करते रहने का उनका स्वभाव ही हो गया है।

हरेक राष्ट्र की और वहां के निवासियों की अपनी-अपनी विशेषताएं होती हैं। यह अमरीका के लोगों के स्वभाव की खासियत कही जा सकती है। मानो उनके स्वभाव व समय का राष्ट्रीयकरण ही हो गया हो। वे या तो समय का पूरा-पूरा उपयोग करके कमाई करते हैं, क्योंकि उससे देश का धन बढ़ता है, या खाली समय को समाज-सेवा में लगाकर उसे राष्ट्रार्पण कर देते हैं। किसी भी हालत में सब लोग मेहनत बहुत करते हैं, इसमें संदेह नहीं। इसीलिए वहां इतनी विपुलता आ सकी है।

सान्फ्रांसिस्को में हम लोग 'इंटरनेशनल हास्पिटेलिटी सेंटर' के मेहमान थे। इस केन्द्र के सात सौ व्यक्तिगत सदस्य हैं और हर सदस्य पांच डालर सालाना बतौर फीस के देता है। व्यापारिक संस्थाएं भी पचास डालर प्रति वर्ष देकर इस केन्द्र की सदस्य बनती हैं। दूसरी संस्थाएं दस से पन्द्रह डालर देकर सदस्य बनती हैं। इसका सालाना बजट करीब-करीब तेरह हजार डालर का है।

साल में एक बार इस संस्था के लोग नगरनिवासियों के पास पैसा इकट्ठा करने की अपील लेकर पहुंचते हैं। हम जब वहां थे उस वर्ष इस तरह की अपील द्वारा इन लोगों ने करीब ४५०० डालर इकट्ठा किये। इस काम के लिए करीब छः सौ स्वयंसेवक इनको मिल गए थे।

आखिर लोग इस केन्द्र के सदस्य क्यों बनते हैं? उनको इससे लाभ क्या है? उनका काम तो यह है कि जब विदेश के लोग सान्फ्रांसिस्को में आते हैं तो ये लोग अपनी-अपनी गाड़ी लेकर केन्द्र पर चले आते हैं और विदेशियों को सारा शहर अच्छी तरह घुमा-फिराकर दिखाते हैं। विदेशी लोगों पर उनके शहर और देश का अच्छे-से-अच्छा असर पड़े, इसकी वे पूरी कोशिश करते हैं। वे विदेशियों को अपने घरों में भी अपना रहन-सहन दिखाने के लिए ले जाते हैं। मौका होने पर चाय-पानी, अल्पाहार की व्यवस्था भी शौक से करते हैं। थियेटर, सिनेमा आदि का भी प्रबन्ध करते हैं। इस तरह की सेवा करने में इनको आनंद मिलता है। इसलिए सेवा करने के लिए खुद फीस देकर ऐसी संस्थाओं के वे सदस्य बनते हैं। विदेशी लोगों से परिचय करने में और उनके बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने में इनको एक प्रकार का आत्म-संतोष मिलता है।

देखा जाय तो हमारे यहां इस तरह की प्रवृत्ति बहुत कम पाई जाती है। यदि इस तरह के विदेशी मेहमान किसी कान्फ्रेंस आदि के लिए आ गये तो उनकी देख-भाल करने के लिए खुश होकर आगे आनेवाले तो फिर भी मिल जाते हैं, लेकिन बिना किसी संबंध या जान-पहचान के विदेश से आये मेहमानों की मेहमानदारी करने अपने-आप होकर पहुंचनेवाले लोग अपने यहां इने-गिने ही मिलेंगे।

इस साल करीब अस्सी देशों से तीन हजार लोगों की व्यवस्था इस केन्द्र ने की थी। इस काम के लिए उनके पास एक पूरा समय देनेवाली सवैतनिक डायरेक्टर है। बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स में पैंतालीस सदस्य हैं। इसकी साल में चार बार बैठक होती है। कार्यकारिणी के सदस्य महीने में एक बार मिलते हैं। बोर्ड और कार्यकारिणी दोनों में व्यापारी और सामाजिक क्षेत्र के नामी लोग होते हैं।

यह संस्थाएं आम टूरिस्टों के लिए नहीं बनी हैं। जो लोग किसी कार्य-विशेष से वहां जाते हैं या किसी संस्था या सरकार की मार्फत या आदान-प्रदान के सिलसिले में वहां पहुंचते हैं, उन्हींका खास तौर से ख्याल रखा जाता है।

इन लोगों को सरकार की तरफ से कोई मदद नहीं मिलती। ये किसी तरह की सरकारी मदद लेना पसंद भी नहीं करते हैं। इनका कहना है कि यह तो जनता का कार्यक्रम है और जनता को ही इसका भार उठाना चाहिए। लोगों को अपनी ताकत पर ही निर्भर रहकर इसे चलाना चाहिए। सरकार से मदद लेकर उससे ये किसी प्रकार बंधना भी नहीं चाहते और समझते हैं कि उनकी भावना की सही तृप्ति इसीमें है कि वे खुद इसका भार वहन करें।

साधारणतः व्यापारी-वर्ग के लोग या उनकी स्त्रियां खुद ड्राइवर बन-कर स्वयं-सेवा के रूप में अपनी सेवाएं देती हैं। छुट्टियों के दिनों में तो व्यापारी लोग प्रायः स्वयं यह काम करते हैं। पैसा खर्च करने में तो इनको विशेष कठिनाई नहीं होती है। मोटर होती ही है। उसे चलाना भी करीब-करीब हरेक को आता ही है। पर हां, समय देते हैं और व्यक्तिगत रूप से शारीरिक कष्ट उठाने को तैयार रहते हैं, यह बेशक तारीफ के लायक बात है।

केंद्र के डाइरेक्टर के पास ऐसे सारे सदस्यों के नाम, पते और टेली-फोन नंबर लिखे होते हैं। हरेक सदस्य के प्रिय विषय और जिन देशों के लोगों को वह अधिक पसंद करता है, इसकी सूची रहती है। सप्ताह के कौन-से दिन और कौन-सा समय उसको अधिक अनुकूल होता है, यह भी दर्ज रहता है। बाहर का कोई दल पहुंचनेवाला हो तो पहले ही फोन करके तय कर लेते हैं कि कब और कौन, किसके लिए आयेगा। ऐसे 'ड्राइवरों' के आते ही उनको मेहमानों का संक्षिप्त परिचय, जो टाइप किया हुआ तैयार रहता है, वह दे देते हैं। आपस में एक दूसरे को मिला देते हैं और रवाना कर देते हैं। यदि चार-पांच दल एक साथ जानेवाले हों तब भी दस-पंद्रह मिनट में ही यह सारी रस्म पूरी हो जाती है। सारे 'ड्राइवर' लोग नियत समय पर ही आ पहुंचते हैं। सभी लोग समय का बड़ा ख्याल रखकर उसकी पूरी पाबंदी

रखते हैं। अपनी लापरवाही से दूसरों का समय बरबाद न हो, इसका बड़ा ख्याल रखते हैं।

पैसा जमा करने के लिए साल में एकाध बार 'डिनर डान्स' का आयोजन करने से काफी पैसा इकट्ठा हो जाता है। पच्चीस-पच्चीस डालर देकर भी अनेक दंपती या जोड़े ऐसे कार्यक्रमों में भाग लेने को उत्सुक रहते हैं।

डेट्रोइट शहर में सामाजिक सेवा करनेवाली सारी संस्थाओं का एक बड़ा सुंदर आयोजन दिखाई दिया। वहां की करीब-करीब सारी ऐसी संस्थाएं, जिनकी संख्या करीब १९३ है, एक समिति के अंतर्गत शामिल हो गई हैं। इनमें से १२३ संस्थाएं तो पूरी तरह से जनता द्वारा चलाई जाती हैं। सत्तर ऐसी हैं, जिनको सरकार की तरफ से मदद भी मिलती है। इन सबने मिलकर तय किया कि वे लोग बार-बार लोगों के पास पैसा मांगने नहीं जायंगे। यह न उनके लिए ठीक है और न चंदा देनेवालों के लिए ही। इसलिए इन सबने मिलकर यह तय किया कि वे साल में सबकी तरफ से मिल-जुलकर एक ही बार चंदा इकट्ठा करेंगे। योजना में शामिल हुई कोई भी संस्था अपने लिए अलग से चंदा इकट्ठा नहीं कर सकती।

यह चंदा साल भर में एक बार लगातार तीन सप्ताह तक बड़े जोर-शोर से और पूरी ताकत लगाकर इकट्ठा किया जाता है। करीब साठ हजार कार्यकर्ता और स्वयंसेवक इसके पीछे लग जाते हैं। वे शहर के एक-एक घर में पहुंच जाते हैं। इस साल उन्होंने आंदोलन के जरिए १ करोड़ ६० लाख डालर इकट्ठा किया। इतनी रकम जमा करने में व्यवस्था के लिए कुल खर्च करीब ३ प्रतिशत आया। बाद में यह चंदा सदस्य-संस्थाओं में पूर्व-निश्चित अनुपात के अनुसार बांट दिया जाता है। कई संस्थाओं ने अपने काम के लिए मिल-जुलकर कर्मचारी भी रख लिये हैं। इससे खर्च कम होता है और काम अधिक। कार्य में एक तरह की निश्चितता और दक्षता भी आ जाती है, क्योंकि इस तरह से अधिक वेतन देकर वे अधिक योग्य और अनुभवी व्यक्ति को ऐसे काम सौंप सकते हैं। वे लोग यह बात अलबत्ता मानते हैं कि किसी संस्था का काम सुचारु रूप से चलाने के लिए बाकायदा दफ्तर, हिसाब-किताब व कागजी खाना-पूरी बराबर होनी चाहिए। इस काम के लिए वे सवैतनिक मंत्री का होना आवश्यक समझते

हैं। उसको मदद देने के लिए फिर जो लोग इकट्ठे हो जाते हैं, वे अवैतनिक काम करते हैं।

एक बात और भी अच्छी लगी। ऐसे सवैतनिक कार्यकर्ता को दूसरे लोग हीन समझकर नौकर की तरह हुक्म देकर काम नहीं लेते। उसकी भी इज्जत औरों के समान ही होती है। समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति एक दूसरे के ऊपर असर व दबाब डालकर अधिक चन्दा इकट्ठा करवा देते हैं। उसी तरह एक ही संस्था के लोग अपने साथियों पर भी दवाब डालने में नहीं हिचकिचाते।

सब संस्थाओं द्वारा मिलकर वर्ष में एक ही बार चंदा इकट्ठा करने की कल्पना मुझे तो बहुत अच्छी लगी। अपने देश में बंबई, कलकत्ता, दिल्ली आदि बड़े शहरों में रहनेवाले लोगों को भी यह योजना उचित लगेगी। हम लोगों को भी कोशिश करके इस तरह की कोई संस्था कायम कर लेनी चाहिए, जिससे अच्छे काम करनेवाली सार्वजनिक संस्थाओं को भी और चंदा देनेवालों को भी बहुत आसानी हो जाय। अलग-अलग चंदा इकट्ठा करने की मेहनत और खर्च बचे। चंदा देनेवालों का समय भी बचे। जो भी कुछ उनको देना है, वह बहुत खुशी से दे सकें। किसीको इंकार करने की आवश्यकता ही न पड़े।

डेट्रोइट की 'युनाइटेड कम्यूनिटी सर्विस' नाम की संस्था भी ऐसी ही संस्थाओं में से एक है। इसके सदस्यों को विदेशों से आये हुए मेहमानों का अपने शहर में स्वागत करने और उनपर खर्च करने में एक विशेष गर्व अनुभव होता है, सुख भी मिलता है। सत्तर वर्षीय वृद्धा मिस फ्लोरेंस कैसेडी, जिन पर हमारी देख-भाल का दायित्व था, इसी संस्था की संचालक हैं। यह खुद एक कमाल की महिला हैं। बहुत ही व्यवस्थित और एक-एक मिनट का हिसाब रखनेवाली, लेकिन साथ ही बड़ी तेज मिजाज की और तय हुए कार्यक्रम पर सबको बराबर कायम रखनेवाली महिला हैं। हर चीज पहले से लिखकर सबको दे देती हैं और उसी हिसाब से चलने के लिए सबको बाध्य करती हैं। कार्यक्रम में किसी हालत में फर्क नहीं हो सकता। वह खुद इस उम्र में भी बहुत मेहनत करती हैं। इसीमें अपने जीवन की सफलता मानती हैं। सेवा करते-करते

उनका प्रभाव भी कई क्षेत्रों में बहुत हो गया है। बड़े-बड़े व्यक्तियों के संपर्क में वह आती रहती हैं और मेहमानों का बहुत-सा काम तो टेलीफोन से ही तुरत-फुरत करा देती हैं। हम कहते, "हमको अपने मित्र से मिलना है। हम टेलीफोन करके उनके साथ कार्यक्रम बना लेंगे।" वह कहतीं, "अरे, तुम क्या करोगे? लाओ, मैं तुम्हारा इंतजाम कर दूं।" और वह तुरंत कर भी देतीं। पर हां, यह सब उनके पहले से बनाये हुए कार्यक्रम में खलल डाले बगैर हो तो ही हो सकता था, नहीं तो वह किसीकी भी चलने दें, ऐसी महिला नहीं थीं। कोई बीमार पड़ जाय तो उसकी वह पूरी व्यवस्था करेंगी। निश्चित कार्यक्रम से छुट्टी भी उसको तभी मिल सकती थी, अन्यथा हर्गिज नहीं। हमारे साथ खुद वह हर जगह जातीं और सारी चीजें खुद एक अनुभवी मार्ग-दर्शक की भांति बड़े उत्साह से हमें समझाती।

डेट्रोइट में फोर्ड का मोटर का कारखाना, फोर्ड नगरी तथा वहां का म्यूजियम, जिनके संबंध में पहले बताया जा चुका है, उन सबका वर्णन मिस केसेडी ने इतनी अच्छी तरह किया कि जैसे वह वहीं की कोई विशेष गाइड हों।

हमारे साथ जाते-जाते कई बार बुढ़िया इतनी थक जाती थी कि जब हमसे अलग होती तो अकेली धीरे-धीरे डगमगाती हुई जाती थी। तब हम लोगों को उसपर दया आ जाती थी। पर अगले दिन फिर वह अपने काम पर मुस्तैदी से हाजिर हो जाती थी। इसी सेवा के बल पर उसकी इतनी ताकत हो गई थी कि वह टेलीफोन से ही बहुत-सा चंदा इकट्ठा कर लेती थी।

मैंने ऊपर दो खास संस्थाओं और शहरों के उदाहरण दिये। लेकिन इस तरह की संस्थाएं और लोग अमरीका में हर जगह पाये जाते हैं। उनके पास धन की तो कमी है नहीं और सहृदयता भी कूट-कूटकर भरी होती है। अपने रहन-सहन और जीवन के तरीकों पर उनको गर्व है। वे चाहते हैं कि विदेशी लोग उनको पूरी तरह समझें और उनकी तारीफ करें।

इस सिलसिले में अब एक बड़ी नामी व्यापारिक कंपनी 'बरोज एंड वेलकम' के बारे में कुछ बताना चाहूंगा। सन १८८० में दो गरीब अमरीकी औषधि-निर्माता इंगलैंड में इकट्ठे हुए और उन्होंने इस कंपनी को जन्म दिया। सबसे पहले टिकिया के रूप में दवा का वितरण इन्होंने ही शुरू

किया था। बरो के मरने के बाद वेलकम ने सारा काम खुद सम्हाल लिया। यह व्यक्ति बड़ा परोपकारी था। इसकी स्त्री इसको छोड़कर चली गई। साथ में इसके लड़के को भी लेती गई। इसलिए वेलकम ने, जिसको सर हेनरी के नाम से सारी दुनिया जानती है, अपनी मृत्यु से पूर्व इस पूरी कंपनी का एक फाउंडेशन बना दिया। आज इस कंपनी की पूरी कमाई धर्मादे या अनुसंधान में अथवा कंपनी को बढ़ाने में काम आती है। पूरी तरह धर्मादे के लिए चलनेवाली इस कंपनी का काम बड़े सुचारु रूप से चलता है। इसकी कमाई भी बढ़ रही है। कंपनी के डाइरेक्टर बहुत ध्यानपूर्वक और मेहनत से काम करते हैं। बिक्री-विभाग पर हमेशा बड़ा दबाव रहता है, क्योंकि जबतक वे बिक्री नहीं बढ़ाते, इस विभाग के कर्म-चारियों का वेतन नहीं बढ़ता। यह तो एक उदाहरण है। वहां के धर्मार्थ ट्रस्टों की संख्या कोई बीसियों हजार में होगी।

बातों-ही-बातों में अमरीकी मित्रों से ही यह भी पता चला कि वहां के डाक्टर आसानी से कब्जे में नहीं आते। वे किसी दवा की सिफारिश घूस खाकर या किसी और वजह से नहीं करते। बिना इसके किये भी उनकी आय काफी होती है। हां, खुशामद करके उनसे अपना काम भले ही निक-लवा लिया जाय या उनको बेईमान बनानेतरीका एक तका यह हो सकता है कि अपनी कंपनी के बहुत-से शेयर उनको बेच दिये जायं। तब तो कंपनी की उन्नति में उनका स्वार्थ भी निहित हो जाता है। फिर वे जरूर चाहेंगे कि उपरोक्त कंपनी अधिक नफा कमाये।

शिकागो में एक शाम को हम लोगों का कोई विशेष कार्यक्रम नहीं था। हम जो चाहें करने के लिए आजाद थे। हम सभी लोगों ने वहां एक सर्कस में जाने का तय किया। सर्कस एक बहुत बड़े पक्के मकान में हो रहा था। चूंकि हमें देर हो गई थी, हम लोग जल्दी-जल्दी टिकट लेकर अपनी जगह पहुंचना चाहते थे। हमारी जगह बताने के लिए वहां बहुत-से लोग एक विशेष प्रकार की आकर्षक टोपी पहने हुए उपस्थित थे। वे हर तरह से हमारी मदद करने को तैयार थे। हमको जो सीटें मिली थीं, वे बहुत खराब थीं। हमने वहां के भाई से कहा तो उसने हमको विदेशी देखकर दूसरी अच्छी जगह दे दी। बड़ी

नम्रता से यह भी कहा कि कोई और दिक्कत हो तो उन्हें बतायें। जैसाकि वहां रिवाज है, इस तरह का काम करनेवाले के लिए हमने कुछ टिप निकालकर देना चाहा। लेकिन हमें आश्चर्य हुआ जब उसने बड़ी मीठी अजीब हँसी के साथ उसे लेने से इन्कार कर दिया। उसकी हँसी बोल रही थी कि वह यह काम पेशे या कमाई की दृष्टि से नहीं कर रहा है। हमें उसके बारे में जानने की अधिक उत्सुकता हुई तो पता चला कि वह सारा मकान और सर्कस 'फ्री मेसन्स' नाम की संस्था की संपत्ति है। 'मेडीनाह टेंपल आडिटोरियम सर्कस' के नाम से यह संस्था काम करती है। इस सर्कस की सारी कमाई वे अच्छे कामों के लिए खर्च करते हैं, खास करके गरीब बच्चों को अस्पताल में भेजकर उनका इलाज कराने में। फ्री मेसन्स संस्था के बाईस हजार सदस्य हैं। हर सदस्य पांच डालर प्रतिवर्ष सहायता-शुल्क देता है। ये सब सदस्य अच्छे घरों के हैं। कुछ तो खुद व्यापारी और कुछ बड़े-बड़े ओहदों पर नौकरी करनेवाले लोग होते हैं। सेवा करने की दृष्टि से ही वे इस संस्था के सदस्य बनते हैं। उनको यह लाजिमी है कि महीने में कम-से-कम दो-तीन बार जब भी संस्था का कोई काम हो तो उसमें अपना समय बिना किसी मुआवजे के दें। हर गुरुवार को इन सबकी सभा होती है। खेल खत्म होने पर उन्हींमें से एक फ्री मेसन ने हम लोगों को हमारे अड्डे पर पहुंचा भी दिया।

सान्फ्रांसिस्को में हमें एक पत्रकार एक पार्टी में मिल गया। यह छ: वर्ष पहले हालैंड से आकर यहां बसा था। इसके व्यक्तिगत जीवन के बारे में बात चल पड़ी तो वह बड़ी दिलचस्प निकली। यह अपने देश हालैंड से जब सान्फ्रांसिस्को पहुंचा था तो इसकी जेब में सिर्फ ७५ सेंट थे। पाठक समझ सकते हैं कि एक परदेशी को, जेब में बिना किसी पैसे के, एक नये स्थान में कितनी कठिनाई हो सकती है। लेकिन इसे कोई विशेष दिक्कत नहीं हुई, खासकर इसलिए कि अमरीका में किसी भी तरह के काम को करने में बुराई या हलकापन नहीं मानते। कोई काम वहां ओछा नहीं। सब कामों की समान कद्र है। यदि आप कोई छोटा काम भी करें तो उससे आपकी इज्जत पर कोई असर नहीं होता। उसने धीरे-धीरे छोटे-मोटे काम करके वहां के समाज में अपने लिए स्थान बना लिया। फिर एक पत्र में एक स्तंभ लिखने

का काम ले लिया। जब हंगरी में बड़ी क्रांति हुई तब इसको एक नई कल्पना सूझी। इसने अपने स्तंभ के द्वारा हंगरी के शरणार्थियों को मदद देने के लिए एक आम अपील छाप दी। अगले २४ घंटे में इसके दफ्तर में करीब ५०० टेलीफोन आये। लोगों ने अपनी तरफ से ऐसे शरणार्थियों को अपने घर में रखने, काम-धंधा देने तथा हर तरह की मदद देने की तैयारी बताई। तुरंत ही सारा इंतजाम हो गया और हवाई जहाज शरणार्थियों को हंगरी से सान्फ्रांसिस्को ले आया। वहां आने पर उनको अलग-अलग घरों में बांट दिया गया। एक सप्ताह में ही इनमें से करीब ९८ प्रतिशत लोगों को काम भी मिल गया। उनमें से अनेकों ने तो साफ-सफाई का काम करना पसंद किया। आनेवालों में एक वकील था, लेकिन उसने भी वकालत करने की बजाय भंगी का काम पसंद किया। अब तो ये लोग इतना कमाने लगे हैं कि इनमें से ७५ प्रतिशत लोग तो आय का काफी भाग बचाकर घर पैसा भेजने लगे हैं। एक बार जो यहां का नागरिक हो गया तो फिर 'सोशल सेक्युरिटी' या 'अनएम्प्लायमेंट बेनीफिट' में कोई भेद-भाव नहीं किया जाता है। ये लोग पहले तो अपने देश वापस लौटना चाहते थे, लेकिन अब यह बात नहीं रही। किसीने उनका नाजायज फायदा नहीं उठाया और न उनसे अपना मतलब साधने की कोशिश की। इससे वे खुश हैं और वहीं रहना चाहते हैं।

इस प्रकार इस भाई ने अपने एक स्तंभ के द्वारा करीब ३०० हंगरी-वासियों को अमरीका में लाकर उनके लिए काम-धंधे की व्यवस्था की और उन्हें सुख से बसा दिया। इससे इसकी खुद की इज्जत भी बढ़ी और अखबार में स्थान भी अच्छा हो गया। इसी बीच वहां के एक बड़े धनवान की बेटी से इसकी दोस्ती हो गई। वह लड़की इससे शादी करने को तैयार हो गई। तबतक उसके पास अपना कोई ठौर-ठिकाना नहीं था। कुछ खास कमाई भी नहीं थी। वह एक विदेशी था, फिर भी बेटी की इच्छा के कारण बाप ने खुशी से इजाजत दे दी। उसने इतना ही कहा कि "बेटी, जैसी तुम्हारी इच्छा। तुम लोग कुछ पैसा चाहो तो मैं दे दूं। बाकी तुम जानो।" लेकिन इन्होंने उनसे पैसा लेना उचित नहीं समझा। दोनों ने तय किया कि खुद मेहनत करके अपने पैरों पर खड़ा होने में ही अधिक आनंद है। उसीसे उनके स्वाभिमान की रक्षा भी हो सकती है। शुरू-शुरू में उनको अवश्य

कठिनाई हुई, मेहनत भी ज्यादा करनी पड़ी, शरीरिक सुख-साधनों की भी कमी रही, फिर भी वे खुश थे। धीरे-धीरे उनकी स्थिति बहुत सुधर गई। जब हम वहां गये तब वे अपना खुद का छोटा-सा नया घर बनाने में व्यस्त थे। बहुत-सा मकान का काम तो वे खुद अपने ही हाथों से, शाम-सबेरे खाली समय में, करते। हंगरी से आये शरणार्थियों में से एक व्यक्ति को उन्होंने भी अपने घर में स्थान दिया है। वह इन्हींके साथ रहता और खाता-पीता है। घर की गृहणी ही उसके लिए भी अपने ही हाथों से खाना पकाती है। वह भी बड़ी मेहनत से इनको अपने मकान बनाने में मदद करता है।

इस उदाहरण से वहां के जीवन के बारे में ज्ञात होता है कि विदेशी लोगों के लिए भी वहां अच्छी सद्भावना है। उनको अपने जीवन में सम्मिलित करने में उनको किसी तरह का संकोच नहीं है। आदमी मेहनती सूझ-बूझवाला और करतबगार हो तो उसकी वहां पूरी पूछ होती है। वह अपने लिए वहां के समाज में तुरंत स्थान बना सकता है।

इन सब बातों से अमरीका के आम जीवन की इस बात की ओर ध्यान आर्कषित होता है कि वहां हर छोटे-से-छोटे आदमी को, यदि उसमें कुछ काबलियत हो तो काम करके सफलतापूर्वक आगे बढ़ने का, और बड़े-से-बड़ा आदमी बनने का पूरा मौका मिलता है। हर व्यक्ति के लिए हर तरह के साधन और मौके उपस्थित हैं। जो भी चाहे उसका फायदा उठा सकता है। इस तरह से फायदा उठाकर रोज ही सैकड़ों-हजारों लोग बराबर आगे आते हैं। रोज नये-नये व्यापार और उद्योग खुलते हैं। नये-नये लोग उनमें आते हैं। उनमें तीव्र प्रतियोगिता होने की वजह से चीजों की सफाई, अच्छाई और उपयोगिता बढ़ती है। वहां के हिसाब से उनके दाम भी कम रहने की तरफ रुख रहता है। रोज नई-नई चीजों का आविष्कार होता ही रहता है। शारीरिक सुख किस तरह बढ़े और जीवन में आराम कैसे अधिक पहुंचे, इसके लिए छोटे-बड़े आविष्कार होते रहते हैं।

आज के अमरीका के नैतिक, व्यापारिक, औद्योगिक या शैक्षणिक क्षेत्र में सफल व्यक्तियों को देखें तो हमें पता चलेगा कि उनमें से बहुतों ने अपना जीवन एक साधारण व्यक्ति की हैसियत से शुरू किया था। इस तरह की समानता का एक कारण यह भी हो सकता है कि अमरीका में

जो लोग शुरू में आकर बसे, वे लोग यूरोप के उच्चवर्गीय लोगों से सताये हुए थे। उनके अत्याचार से बचने के लिए वे वहां से भागकर आये और इस नये देश में बसे। इसलिए इन लोगों की भावना वर्ग और धार्मिक भेद-भाव के खिलाफ रही। इन्होंने शुरू से कोशिश रखी कि इन भेदों की वजह से किसीके ऊपर अत्याचार न हो। उनके लिए यह गर्व करने लायक बात है कि उन्होंने वर्ग-भेद को अपने जीवन में घुसने नहीं दिया।

हम लोग इतनी कोशिश करते हैं, फिर भी हमारे यहां से ऊंच-नीच तथा छोटे-बड़े की भावना अभी भी बहुत प्रमाण में कायम है। हमारे धार्मिक ग्रंथ कहते हैं, ऋषि-मुनियों ने सिखाया है, गांधीजी ने पूरी कोशिश कर ली, फिर भी हमारे समाज से यह अंतर दूर नहीं हुआ है। छोटा काम करने-वाले को हम हीन निगाह से देखते हैं। पैसेवालों का चरित्र अच्छा न हो, तब भी उनकी समाज में प्रतिष्ठा होती है। अमरीका धनवानों का देश होकर भी, समाजवादी देश न होने पर भी, इस बीमारी से बच सका, इसके लिए वहां के लोग बधाई के पात्र हैं।

: १३ :

जिनके हम मेहमान थे

शिकागो पहुंचकर हमें बहुत खुशी हुई, जब हमें यह पता चला कि वहां हमें श्री और श्रीमती बोबको के परिवार के घर में रहने का मौका मिलेगा। अमरीका का जीवन ही ऐसा है कि वहां के लोग हर तरह की मदद कर सकते हैं, लेकिन अपने घर में किसीको टिकाना उनके लिए आसान बात नहीं। उनके मकान में इतनी जगह ही नहीं होती। सब काम हाथ से करने की वजह से उनके पास इतना समय और सुविधा भी नहीं होती। उनके कुटुंब में तीन दिन रहकर हमें बहुत अच्छा लगा। अमरीका के कौटुंबिक जीवन के बारे में अधिक जानकारी मिल सकी।

यह एक उच्च मध्यवर्गीय अमरीकी परिवार कहा जा सकता है। उसके पास खुद का एक अच्छा-सा दोमंजिला मकान था। वैसे मकान खुद का था, लेकिन जैसा कि अमरीका में आमतौर पर प्रचलित है, उनका मकान भी कर्ज लेकर बनाया हुआ था। इसलिए रहन रखा हुआ था। घर की लागत करीब २३५०० डालर थी, जिसमें से १० हजार तो शुरू में ही नकद देना पड़ा। बाकी १५० डालर हर महीने के हिसाब से चुकाते हैं।

श्री बोबको एक अनुसंधान-फाउंडेशन में इंजीनियर हैं। १५ हजार डालर सालाना तनख्वाह पाते हैं। इसके अलावा और कोई कमाई नहीं है। तीन बच्चे हैं। बड़ी लड़की डोरोथी पंद्रह वर्ष की थी। दूसरा लड़का, बिल बारह वर्ष का और तीसरा, कैनेथ ग्यारह वर्ष का था। दोनों लड़के सुबह पहले अखबार बेचने जाते। साल में करीब दो-दो सौ डालर खुद की कमाई कर लेते थे। एक-एक अखबार ८० से १०० पृष्ठ का होता है। उनके बोझ का तो कोई अंदाज ही नहीं। अखबारवाले उनको एक हाथ-गाड़ी देते हैं। अखबार उनके घर पर ही पहुंचा जाते हैं। प्रत्येक लड़के को अखबारवालों की तरफ से १५-१५ डालर हर महीने मिलते हैं। ग्राहकों से त्योहारों पर

टिप आदि भी मिल जाती है। लड़की फुरसत के समय पास-पड़ोस के परिवारों में बच्चों की देख-भाल के लिए चली जाती है। उसे इस तरह के फुटकर कामों के लिए एक घंटे का ५० सेंट या ढाई रुपया मिल जाता है। सब बच्चे अपनी मां को घर के काम-काज में पूरी मदद करते हैं। मां घर का पूरा काम करते हुए सामाजिक संस्थाओं में भी रस लेती है।

श्री बोबको ने बारह वर्ष पहले ४५० डालर प्रति मास पर इसी कंपनी में नौकरी शुरू की थी। अच्छा काम करने की वजह से साधारण लोगों की अपेक्षा उनको काफी अधिक तरक्की मिली। इनके खर्च का मोटा हिसाब इस प्रकार है—

२० डालर प्रति मास संपत्ति-कर।

१८० डालर आय-कर के लिए कंपनी स्वयं काट लेती है।

६० डालर, यानी पगार का ५ प्रतिशत, रिटायरमेंट-फंड में जाता है।

५० डालर बच्चों की पढ़ाई।

७५ डालर तीन बच्चों की आगे की पढ़ाई के लिए जमा करवाते जाते हैं।

१०० डालर किसी दुर्घटना या आकस्मिक बड़े खर्च के लिए बैंक में जमा कराते हैं।

शेष २०० डालर खाने-पीने की वस्तुओं, बीमा, मोटर-खर्च आदि में लगते हैं।

इससे पाठकों को अमरीका के एक खाते-पीते उच्च मध्यमवर्गीय परिवार के रहन-सहन के बारे में कुछ कल्पना आवेगी, उनके जीवन का कुछ चित्र पाठकों के सामने खड़ा हो सकेगा।

उन लोगों का जीवन-स्तर इतना मंहगा क्यों हो जाता है, इस बारे में सान्फ्रांसिस्को के हमारे एक पत्रकार मित्र ने अच्छे उदाहरण दिये। उसने कहा कि जबतक उनकी मोटर का 'थर्ड पार्टी इंश्योरेंस' नहीं हो जाता तबतक वह अपनी गाड़ी को छूने में भी कांपते हैं। यदि भूल-चूक से कहीं कोई टक्कर कर बैठा तो अदालत जितना भी हर्जाना देने के लिए कहे उतना सामनेवाले व्यक्ति को देने के लिए बाध्य होना पड़ता है। हर्जाना सामनेवाले की स्थिति पर निर्भर रहता है। यदि वह लखपती या करोड़पति है, जैसा कि वहां अनेक लोग होते हैं, तो हर्जाना भी लाखों और करोड़ों में देना

पड़ता है। मामूली चोट लग जाने पर भी, यानी हाथ-पांव टूट जाने पर भी, बड़ा हर्जाना देना पड़ता है। हमारे यहां जिस तरह 'थर्ड पार्टी इंश्योरेंस' गाड़ी के बीमे के साथ अपने-आप कानूनन हो जाता है, उस तरह अमरीका में नहीं है। इस तरह का दंड इनपर हो जाय तो इनका पूरा जीवन बरबाद हो सकता है। यदि ये तुरंत हर्जाना न भर सकें तो महीना बंध जाता है। फिर उम्रभर उसे चुकाते रहना पड़ता है।

इसलिए जिस तरह अमरीका के जीवन में मोटर होना एक विलासिता नहीं, बल्कि आवश्यकता हो गई है, उसी तरह उसका बीमा कराना भी आवश्यक हो गया है। उनके खुद के पास ही एक छोटी गाड़ी है, जिसको उन्होंने तीन लाख डालर के लिए 'थर्ड पार्टी इंश्योरेंस' करा रखा है। गाड़ी की टूट-फूट और खुद को चोट लगे तो उसका भी दो हजार डालर का बीमा अलग से है। इन सबका प्रीमियम ये लोग १५० डालर सालाना भरते हैं। इस तरह से यह एक दिखाई न देनेवाला, पर आवश्यक, खर्च करना पड़ता है।

इसी तरह से और चीजों का भी बीमा कराना आवश्यक हो जाता है। चूंकि इनके पास बचत की पूंजी नहीं होती, इसलिए कोई आफत या तकलीफ अचानक आ जाय तो उसे सहन करने की ताकत उनमें नहीं होती। हर संभावित विपत्ति का इंतजाम इनको पहले से करके रखना पड़ता है। मोटर के १५० डालर के बीमे के अलावा उन्होंने अपने स्वास्थ्य का, हर व्यक्ति का करीब १०० डालर, आग और चोरी का ५० डालर और मॉरगेज इंश्योरेंस का ८० डालर प्रीमियम के हिसाब से बीमा रखा था। जिंदगी का बीमा इसके अलावा है। इस तरह एक मामूली मध्यम श्रेणी के परिवार को बीमे को दो हजार रुपये से ज्यादा का खर्च आ जाता है।

बीमारी में भी बहुत ज्यादा खर्च होता है। दवा-दारू व अस्पताल की सेवा बहुत ही मंहगी है। सिर्फ अस्पताल में कमरे का भाड़ा ३० से ३५ डालर रोज होता है। डाक्टर व नर्स की फीस, दवा-दारू, खाने-पीने का खर्च इसके अलावा होता है। इसीलिए जब हम लोग अमरीका पहुंचे तो हमारी देख-रेख करनेवालों ने पहली चीज की थी हम सब लोगों के

स्वास्थ्य का बीमा करवाना।

अभी-अभी मेरे पास श्रीमती बोबको का पत्र आया, जिसमें उन्होंने अपने विदेशी अतिथियों के बारे में दिलचस्प वर्णन किया गया है। वह लिखती हैं कि "इस वर्ष हम लोग बहुत अधिक व्यस्त रहे। हमको अपने विदेशी मेहमानों के प्रति इतनी दिलचस्पी उत्पन्न हो गई है कि आप लोगों के जाने के बाद हमारे यहां स्पेन, इटली, अबीसीनिया, बेलजियम, तुर्की, फिलीपाइन्स, वेनीजूला, पेरू, मेक्सिको आदि कई देशों के मेहमान आकर रह गये हैं। भारत से भी दो-एक मेहमान आये थे।

"हमें इन मेहमानों के द्वारा बहुत-कुछ सीखने को मिला है और इस वजह से हमने अपनी दूसरी बहुत-सी प्रवृत्तियां कम कर दी हैं।

"हमारे घर का अगला हिस्सा अब हमेशा के लिए मेहमानों का कमरा बन गया है।

"हमारे नये अनुभव की वजह से अखबारों में जो नित्य नई खबरें छपती हैं उनका हमारे लिए अब अधिक महत्व हो गया है। अब नये दृष्टिकोण से हम उसका अर्थ देख व समझ पाते हैं। हमारे मित्रों की समस्याएं हमारे लिए प्रत्यक्ष अर्थभरी हो गई हैं। अब हम ऐसी स्थिति में आ गये हैं कि हमारी कांग्रेस को और हमारे राजनैतिक नेताओं को हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के बारे में अपनी राय लिख सकें।

"आपने महात्मा गांधी की लिखी हुई किसी किताब के बारे में मुझे कहा था। मुझे श्री नेहरू के विचारों को जानने की भी बहुत इच्छा है। क्या उनके बारे में कुछ किताबें भेज सकेंगे? हमारी पत्र-पत्रिकाएं खबरें तो बहुत छापती हैं, लेकिन क्या वे सब खबरें सही ही होती हैं?"

अमरीका के दौरे में हम लोगों को वहां के एक अच्छे किसान-परिवार से भी परिचय करने का मौका मिला। नेब्रास्का प्रान्त में दनवार नाम का गांव गेहूं की फसल के लिए प्रसिद्ध है। वैसे यह सारा प्रदेश ही खेती-प्रधान है। जिस किसान के घर हम गये, उसका नाम अर्नाल्ड रीने था और उसकी पत्नी का लारेना। पुरुष ४३ वर्ष का हृष्ट-पुष्ट जवान और स्त्री ४० वर्ष की थी। इनके चार लड़के थे। दो जुड़वां १४-१४ वर्ष के, एक १३ वर्ष का और छोटा १२ वर्ष का था। इनका खेत ४७० एकड़ का था। इसमें १२०

एकड़ में मकई, ८० में गेहूं, ५० में बाजरा, ३० में ज्वार और ४० में घास पैदा करते हैं। करीब १५० एकड़ जमीन मकान, जानवरों का अहाता और रास्तों आदि के लिए खाली छोड़ी गई है।

पूरी खेती ये लोग खुद अपने हाथों से करते हैं। ट्रेक्टरों की सहायता से मियां-बीवी और बच्चे सब काम में जुटे रहते हैं। सबके-सब बहुत मेहनत करते हैं। इतनी बड़ी खेती और इतना बड़ा काम होते हुए भी कोई नौकर नहीं—न घर में और न खेत में ही। कभी बहुत जरूरत पड़ी तो साल में दो-चार दिनों के लिए एकाध मजदूर भाड़े पर रख लेते हैं। अपने ट्रेक्टरों की मामूली दुरुस्ती भी अपने खेत में बने हुए वर्कशाप में ये खुद ही कर लेते हैं।

इसके अलावा खेत पर करीब सौ जानवर भी पाले हुए हैं। तीन-चार जानवर तो दूध के लिए, बाकी का मांस काम में आता है। करीब एक हजार मुर्गियां और सौ सुअर भी हैं। जानवरों को पालकर, और बड़ा करके बेच देते हैं। उसकी भी कमाई होती है। इन सबके लिए भी आवश्यक काम खुद अपने हाथों से कर लेते हैं।

साल में एक ही फसल होती है। सिंचाई की कोई व्यवस्था नहीं है। बारिश और जो बर्फ गिरती है, उसीपर निर्भर रहते हैं। पैदावार अदला-बदली करके लेते हैं। अपने उपयोग के लिए दूध और साग-सब्जी भी खेत पर पैदा कर लेते हैं। मजदूरी मंहगी है। करीब सवा से डेढ़ डालर प्रति घंटे के हिसाब से देनी पड़ती है। इसलिए ये लोग नौकर नहीं रखना चाहते।

इनका खुद का एक बहुत अच्छा पक्का मकान खेत में ही बना हुआ है। दो सोने के कमरे हैं। रेडियो, टेलिविजन सेट लगा है। रसोई में बिजली के सब उपकरण मौजूद हैं। नई मोटर पास में है। चारों बच्चे स्कूल में जाते हैं। बाप ही इनको मोटर से स्कूल में छोड़ आता है। घर में ठण्डे और गर्म पानी आदि की सब व्यवस्था मौजूद है। इस तरह अमरीका का एक किसान रहता है। इनकी स्थिति इतनी अच्छी इसलिए हो सकी कि इन्होंने और इनके बाप-दादों ने अक्ल से काम लिया। साथ-ही-साथ बहुत कड़ी मेहनत भी की। कुछ प्रकृति ने भी साथ दिया।

इसकी कुछ व्यक्तिगत कहानी से भी पाठकों को परिचित कराऊं। इसका हाल जानने से वहां के लोगों की समस्याओं की कुछ कल्पना पाठकों को होगी। इसकी सारी जमीन इसके पिता के स्वामित्व की है। खेत पर हुई कमाई का आधा हिस्सा यह अपने पिता को भाड़े के रूप में देता है। हम जब वहां थे उससे पहले वर्ष निवल आय करीब ६ हजार डालर की हुई। कभी-कभी नुकसान भी होता है। इसमें से एक हजार डालर आयकर में जाता है। करीब दो तीन हजार डालर बचते हैं। बैंक में पैसा रखना उसे पसन्द नहीं। अपने साधनों को सुधारने में पैसा लगाता रहता है। उसके बच्चे भी बड़ा काम करते हैं और खेत पर खुश हैं। कहते हैं कि वे भी बड़े होकर खेत पर ही रहेंगे और किसान का जीवन बितायेंगे।

इसके पिता ने दूसरे किसानों से १९१४ में करीब १५० एकड़ जमीन मोल ली थी। फिर १९२९ में ८० एकड़ जमीन और ले ली। सन् १९३१ में फिर ८० एकड़ और १९४६ में पुनः १६० एकड़ बढ़ा ली। जमीन की कीमत करीब २०० डालर प्रति एकड़ है। चारे आदि के लिए ६ प्रतिशत ब्याज से रकम उधार मिल जाती है। यद्यपि खेती से कमाई ज्यादा नहीं है, फिर भी वह सुखी है। हवा-पानी अच्छा है। जीवन तुलनात्मक दृष्टि से सस्ता है। लालच और बुरे कामों के प्रति आकर्षण नहीं है। दूसरे किसान पड़ौस में ही एकाध मील दूर पर घर बनाकर इसी तरह खेतों में रहते हैं। ये किसान बहुत भले हैं। अथितियों का खूब सत्कार करते हैं। हमारा भी इन्होंने बड़े प्रेम से स्वागत किया। खूब खातिरदारी की। हम लोग शाकाहारी थे, फिर भी न जाने कितने पकवान बनाये थे। कहते थे कि हम उनके सम्माननीय अतिथि हैं। ऐसे लोग कब-कब यहां पधारते हैं।

बड़े आदर से घूम-फिरकर हम लोगों को खेत, जानवर आदि बताये। चारों लड़कों के जुम्मे मुख्यतः जानवरों की देख-रेख थी। उनको चारा-पानी देना इत्यादि वे खुद ही बड़े उत्साह से कर रहे थे। हमें घुमाते हुए काम भी करते जाते थे। उसका पिता उसके साथ नहीं रहता। जमीन का मालिक वह है, इसलिए या तो लड़का अपने बाप से जमीन खरीद ले, नहीं तो उसको भाड़ा चुकाता रहे, यह वहां की व्यवस्था है।

इस प्रदेश के मुख्य शहरों में बहुत ही बड़े-बड़े पक्के गोदाम बने हैं

जिनमें लाखों-करोड़ों मन गेहूं रखने की व्यवस्था सरकार की तरफ से है । बाजार-भाव से ज्यादा निर्धारित, दाम देकर सरकार गेहूं खरीद लेती है और उसे संभालने व बेचने की व्यवस्था करती है । ये लोग चाहें तो खुद भी सीधे व्यापारियों को बेच सकते हैं। अब तो तीसरी पंच-वर्षीय योजना में हमारे देश में भी अमरीका से इतना गेहूं आवेगा कि इसी तरह की व्यवस्था हमें भी करनी पड़ेगी। जगह-जगह बड़े-बड़े गोदाम दिखाई देंगे, जिनमें मशीनें लगी होंगी, जिनकी सहायता से गेहूं भीतर या बाहर लाया जा सकेगा ।

: १४ :

अमरीका के रेड इंडियन

अमरीका के आदिवासियों से, जिन्हें रेड इंडियन कहा जाता है, मिलकर भारत के 'इंडियन्स' को बड़ी प्रसन्नता हुई। अमरीका के भूखंड के दक्षिण-मध्य में एरीज़ोना प्रान्त में इन लोगों की बस्ती अधिक है। हम लोग हवाई जहाज से अलबुकर्क उतरे। वहां हमारा स्वागत करने के लिए विंडोरॉक से श्री ढिल्लन प्लटेरो और उनके कई साथी पहुच गये थे। ढिल्लन से हमारा पहले का परिचय था, क्योंकि दिल्ली कान्फ्रेंस में अमरीका की तरफ से वह भी आये हुए थे। वहां जाने से पहले हमें पता नहीं था कि अपने क्षेत्र में वह कितने महत्व का स्थान रखते हैं। ३५-३६ बरस के नौजवान होंगे। फिर भी वहां की जातीय कौंसिल के उप-सभापति थे। उस पूरे क्षेत्र में उनकी बड़ी कद्र थी। रेड इंडियन्स में सबसे बड़ी और प्रगतिशील जाति नवाहो के नाम से प्रसिद्ध है। इनका मुख्य केन्द्र विंडोरॉक है।

अलबुकर्क से अपनी मोटर को खुद चलाकर, ढिल्लन हम सबको कोई १५० मील, विंडोरॉक ले गये। रास्ते में उन्होंने हमें कई स्कूल आदि दिखाये, जो कि उस क्षेत्र में अभी-अभी खुले हैं। अमरीका का यह क्षेत्र अपेक्षाकृत बहुत पिछड़ा हुआ और गरीब है। वहां की परिस्थितियां हमसे कुछ मिलती-जुलती हैं। उस क्षेत्र में रास्ते बहुत कम हैं। बहुत जगह अभी तक कच्चे रास्तों से गुजरना पड़ता है। स्कूल भी बहुत कम हैं। अब ढिल्लन और उनके साथियों के प्रयत्न से नये-नये स्कूल खुल रहे हैं। स्कूलों में शिक्षकों, पैसों व अन्य सुविधाओं की कमी है। एक स्कूल में तो पानी इतना दुर्लभ है कि वहां महीने में सिर्फ एक बार एक हजार गैलन पीने का पानी आता है। उसीमें से बच्चों आदि को तुला-तुला पानी दिया जाता है। यहां छोटी-छोटी बस्तियां दूर-दूर फैली

हुई हैं। इस स्कूल में कुल ७० विद्यार्थी दूर-दूर से रोज पढ़ने आते हैं। इस जाति के बड़े-बूढ़े लोग अभी भी अपने बच्चों को स्कूलों में भेजना पसंद नहीं करते। कहते हैं कि उससे लड़के शौकीन हो जायंगे, बिगड़ जायंगे और फिर मेहनत-मजदूरी नहीं करेंगे।

आदिवासियों के बारे में हमारी और वहां की सरकारों के सामने कई समस्याएं समान हैं। वहां भी पुराने लोगों को आधुनिक शिक्षण और आधुनिक साधनों का प्रवेश अच्छा नहीं लगता है। उनको डर है कि उनके बच्चे इसकी वजह से अपनी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक परंपरा को कहीं भूल न जायं और अपने पूर्वजों के घरों को छोड़कर कहीं और शहरों में न जा बसें।

लोगों में गरीबी तो थी, लेकिन साथ ही फुर्सत भी ज्यादा थी। हमारा सत्कार भी उन्होंने जितना किया उतना और किसीने नहीं किया। बड़े प्रेम से उन्होंने हमारी हर तरह से खातिरदारी की। एक रोज तो उन्होंने अपनी जाति के मालकी के तीनों छोटे हवाई जहाज, जिसमें तीन-तीन, चार-चार आदमी बैठ सकते थे, हमारे हवाले कर दिये। उनमें बैठकर उन्होंने अपना सारा प्रदेश एक दिन में ही हमें दिखा दिया। यह सारी आव-भगत और खर्चा उन्होंने अपनी जाति की कौंसिल की तरफ से किया।

वहां जाने पर हमें ऐसा महसूस हुआ कि सारी दुनिया में दूर-दूर के फासले पर मनुष्य-जाति बिखरी हुई है और लोग बसे हुए हैं। उनकी जल-वायु, रहन-सहन, खान-पान, भाषा, प्राकृतिक स्थिति इतनी भिन्न होते हुए भी जहां-जहां आर्थिक परिस्थितियां एक-सी होती हैं वहां लोगों के विचार करने का तरीका भी मिलता-जुलता-सा हो जाता है। इस प्रदेश के गरीब और पिछड़ा हुआ होने की वजह से यहां के लोगों के सोचने-विचारने का तरीका अमरीका के अन्य लोगों की बनिस्बत हमारे से अधिक करीब है। यह देखकर हमको एक तरह का समाधान मिला। प्रकृति ने तो सारी मनुष्य-जाति को एक ही इकाई माना है। सबको एक-सी बुद्धि और भावना प्रदान की है। ऊंच-नीच के भेद-भाव मनुष्यों ने अपने इर्द-गिर्द खड़े कर लिये हैं, इसकी अच्छी तरह से प्रतीति हो गई।

गत कुछ ही वर्षों में नवाहो-जाति ने काफ़ी प्रगति की है। ये लोग पहले

से बहुत धनवान भी हो गये हैं। इन वर्षों में इनके क्षेत्र में तेल और ऐटमी औजार व हथियार बनाने के लिए मुख्य वस्तु यूरेनियम काफी मात्रा में प्राप्त हुए हैं। इसके लिए जगह-जगह खुदाई चल रही है और प्रदेश के जंगलों और पहाड़ों के बीच में तेल निकालने की नई-नई फैक्टरियां बिठाई जा रही हैं। इन दोनों चीजों की वजह से, जहांतक मेरा ख्याल है, इस जाति को प्रतिदिन रायल्टी के रूप में ३७ हजार डालर की कमाई संघीय सरकार द्वारा प्राप्त होती है। इसलिए ये लोग हवाई जहाज आदि भी रख सकते हैं और नई-नई सड़कों और स्कूलों आदि का निर्माण करने में व्यस्त हैं।

जिन दिनों हम लोग वहां पहुंचे थे, वहां की जातीय कौंसिल का चुनाव हो रहा था। उसमें हमारे मित्र ढिल्लन भी एक उम्मीदवार थे। उनको अपने चुनाव की कोई परवा नहीं थी। वह तो दिनभर हमारे साथ ही भटकते रहे। चुनाव बिल्कुल सीधे-सादे तरीके का था, जैसा कि अपने यहां होता है। बहुत-से मतदाता हमारे यहां की तरह ही अशिक्षित व गरीब हैं। अनेक व्यक्तियों को यह भी समझाकर बताना पड़ रहा था कि मत किस तरह देना चाहिए।

उन्होंने अपने हवाई जहाजों के द्वारा अमरीका के बड़े ही सुन्दर प्राकृतिक स्थल व जगत-प्रसिद्ध ग्रेंड केनियन की सैर भी हमें करवाई। बड़ा सुहावना दिन था। ग्रेंड केनियन के ऊपर हवाई जहाज से जब हमने चक्कर लगाया तो वहां का दृश्य बहुत ही देखने लायक व लुभावना था। घने जंगलों के बीच बड़े पहाड़ों को काटती हुई नदी दूर तक चली जाती है। ऊपर से नीचे तक, बड़े अजीब ढंग से, हजारों फुट की गहराई तक, सारा-का-सारा पहाड़ कटा हुआ है। नदी नीचे से बहती है, मानों प्रकृति से खेलती हुई, कठोर पहाड़ों को भी इधर-से-उधर तक चीरती हुई निकल जाती है। इसके चारों तरफ बहुत ही सुन्दर राष्ट्रीय बाग लगा दिया गया है। अमरीका के दर्शनीय प्राकृतिक स्थलों में इसका सबसे ऊंचा स्थान है। हवाई जहाजों को हमारे लिए खासतौर वहां उतारा गया और उपवन के उच्च अधिकारी दो बड़ी मोटरों को लेकर हमें लेने आ गये। उन्हें बाग में ले जाकर जमीन पर से भी ग्रेंड केनियन की अतुलनीय

शोभा का दर्शन हमें कराया।

हिन्दुस्तान में बैठे-बैठे हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि अमरीका में भी इतने पिछड़े हुए प्रदेश और लोग हैं। उनके सामने भी हमारी ही भांति बच्चों और प्रौढ़-शिक्षण की समस्याएं हैं। हम तो जब अमरीका के बारे में सोचते हैं तो न्यूयार्क और वाशिंगटन, उनकी गगनचुंबी अट्टालिकाएं, हॉलीवुड में बनी फिल्म द्वारा बताई जानेवाली जिन्दगी के बारे में सोचते हैं। वहां लोगों की भी अपनी बड़ी समस्याएं हैं। उन लोगों में भी समाज-सुधार की आवश्यकता है, इसको हम भूल जाते हैं। स्वाभाविक रूप से उनका ध्यान और दिलचस्पी उनके अपने लोगों की उन्नति करने की तरफ लगी हो तो उसमें हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

: १५ :

डिसनीलैंड

अमरीका जाकर 'डिसनीलैंड' न देखना, भारत आकर किसीका ताज-महल न देखने जैसा है। वह एक जागृत स्वप्न है। लॉस एंजेलस से कुछ ही दूर एनीहम नाम की जगह पर, १६० एकड़ जमीन पर यह स्थित है। हॉलीवुड की तरह ही यह भी दुनियाभर में मशहूर है। हॉलीवुड का तो नाम ही ज्यादा है। स्टूडियो में दाखिल होने पर दिलचस्पी कायम रखने जैसी विशेष कोई चीज़ नहीं। सेट्स अवश्य काफी विस्तृत और खर्चीले होते हैं। इसके विपरीत डिसनीलैंड एक दिलचस्प अजायबघर है। बड़े हों या बच्चे, सबकी दिलचस्पी का सामान डिसनीलैंड में भरा पड़ा है। डिसनी-लैंड में दाखिल होते ही लोग समय व भूगोल को भूल जाते हैं। कई महा-द्वीपों की नदियां वहां बहती हैं। वहां मेक्सिको है तो हवाई भी है। विशाल-काय आॅल्प्स भी खड़े दीखते हैं। वर्तमान से भूत और भूत से भविष्य में पहुंचने में देर नहीं लगती। यह भी कहा जा सकता है कि डिसनीलैंड में पहुंचकर वक्त ही रुक जाता है।

सचमुच डिसनीलैंड वाल्ट डिसनी की प्रतिभा की उच्चतम देन है, वाल्ट डिसनी ने सूक्ष्म कल्पना को इतने सुन्दर ढंग से साकार किया है कि कल्पना वास्तविकता में परिणत हो गई है। सत्य को कल्पना से रंगना बहुत बड़े कलाकार का काम है, किन्तु कल्पना को सजीव बनाना और भी मुश्किल है। वाल्ट डिसनी ने बड़ी पटुता से इसका सम्पादन किया है। मन-बहलाव और दिलचस्पी के इतने साधन इकट्ठे कर दिये हैं कि बड़े व बच्चे आसानी से कई दिन व्यतीत कर सकते हैं। हमारे पास वक्त की कमी थी। एक ही रोज में सबकुछ देखना असम्भव था। अतः कुछ ही चीजें देख पाये।

डिसनीलैंड पांच हिस्सों में विभक्त है—एडवेंचरलैंड, फेंटसीलैंड,

फ्रंटयिरलैंड, टुमॉरोलैंड और मेन स्ट्रीट, यू. एस. ए.। डिसनीलैंड की सरहद पर पहुंचकर दर्शकों को अनुमान नहीं हो पाता कि अन्दर क्या-क्या चमत्कार हो सकते हैं। बाहर करीब १२,००० मोटरें खड़ी करने के लिए जगह बनी हुई है। नियमित रूप से दिन भर बसें लॉस एंजेलस के हर हिस्से से बराबर वहां आती रहती हैं। प्रवेश-द्वार छोटे-से स्टेशन के रूप में बना है। यहींपर से पुराने ढंग की रेल, जो कुछ ऊंचाई पर चलती है, पूरे बाग़ का चक्कर लगाती है। इस रेल में बैठकर दर्शकगण इस कला-मंदिर की परिक्रमा करते हैं। बाग़ की विविधता का कुछ-कुछ अनुमान भी लग जाता है।

पाठक पूछेंगे डिसनीलैंड में आखिर ऐसी कौन-सी खासियत है? डिसनीलैंड क्या है, यही एक जटिल प्रश्न है। उसे एक विचित्र मेला कहा जाय या अजायबघर? दुनिया की बड़ी नाट्यशाला कहा जाय या मनोरम दृश्यों का समूह? दर्शक विचार में पड़ जाते हैं।

वास्तव में डिसनीलैंड एक माया नगरी है। इसकी कल्पना वाल्ट डिसनी के मस्तिष्क में बीस साल तक करवटें बदलती रही। १९५२ में जाकर कहीं नक्शे बनने शुरू हुए। १९५४ में जमीन खरीदी गई। १४ महीने के अन्दर ही ८,५०,००,००० डालर खर्च करके वीराने में आश्चर्य-जनक आबादी पैदा कर दी गई। यह एक चतुर शिल्पी का कमाल था।

हम लोगों ने रेलगाड़ी से डिसनीलैंड का पूरा चक्कर लगा लिया। उसके बाद पैदल ही आगे बढ़े तो मेन स्ट्रीट पर पहुंच गये। यह १८९० में जैसे अमरीकी शहर हुआ करते थे, उस आधार पर बनाया गया था। हमें ऐसा लगा कि हम एच. जी. वेल्स की 'टाइम मशीन' पर बैठकर वास्तव में सन् १८९० में पहुंच गये हैं। पुराने ढंग की बग्घी पर भी बैठकर यहां का चक्कर लगाया जा सकता है, किन्तु पैदल का मज़ा कुछ और ही होता है। टाउन हॉल, पोस्ट आफिस और फायर हाउस से गुजरते हुए हम आगे बढ़े तो सामने से आग बुझाने का इंजन आता देखा। खास तरह पैदा किये गए छोटे कद के घोड़े उसे चला रहे थे। विविध प्रकार की खान-पान की दुकानें लगी हुई थीं। छोटी-छोटी बारीकियों का ख्याल रखा गया था। हम वास्तव में पुराने जमाने में पहुंच गये थे।

पुराने जमाने को पीछे छोड़ते हुए हम ग्रागे बढ़े तो मुख्य चौराहे 'प्लाज़ा' पर पहुंच गये। यहीं से टुमारोलैंड, फेंटसीलैंड, फ्रंटियरलैंड ग्रौर एडवेंचरलैंड को रास्ते जाते हैं। हमने टुमारोलैंड का निरीक्षण करने का तय किया। कल की दुनिया का प्रतिनिधित्व करनेवाली कौन-सी चीज हो सकती है? एक विशाल 'स्पेस रॉकेट'! हम टिकट लेकर ग्रन्दर चले गये। ग्रन्दर एक बड़ा 'प्लेनेटोरियम' था। मशीनों की मदद से ऐसा लगा कि रॉकेट ग्रब चंद्रमा की तरफ जाने को तैयार हुग्रा है। धूप ग्रौर छांह, प्रकाश ग्रौर ग्रंधेरे की मदद से ऐसा लगता था कि हम तेजी से चंद्रमा की तरफ़ लपके जा रहे हैं। एक व्यक्ति बराबर रफ्तार, दूरी ग्रौर स्थान के परिवर्तन के बारे में बताता जा रहा था। ग्रावाज करनेवाली मशीनें खूब ज़ोरों से चल रही थीं ग्रौर प्लेनेटोरियम जोरों से हिल रहा था। पांच-सात मिनट तक इसी प्रकार चलता रहा। उसके बाद ग्रावाजें धीमी पड़ने लगीं। हिलना कम होता गया ग्रौर हम वापस पृथ्वी पर ग्रा गये। हमारी यह चंद्रमा की सैर काफ़ी दिलचस्प रही। यद्यपि रॉकेट एक इंच भी ग्रपनी जगह से नहीं हिला, फिर भी ग्रसली सैर का-सा पूरा मजा ग्रा गया। रॉकेट से निकलकर हम ग्रागे बढ़े तो एक ग्रजायबघर में भविष्य में बननेवाली चीजें सजी हुई थीं। हमने कौतूहलभरी नज़र से उन चीजों का निरीक्षण किया।

फेंटसीलैंड में ड्राब्रिज के ऊपर से प्रवेश करते हैं, जो एक ७० फुट ऊंचे किले का हिस्सा है। इस किले के एक कमरे में सुप्त सुन्दरी पूरी मध्ययुगीन भव्यता के साथ सोई है। ग्रागे बढ़ने पर कहानी की पुस्तकों के पात्र देखने को मिलते हैं, जैसे, मिकी माउस, डोनाल्ड डक इत्यादि। वाल्ट डिसनी ने इन पात्रों को मूर्तरूप दिया है। ये कार्टून फिल्मी दुनिया को बहुत बड़ी देन हैं। बच्चों के दिल-बहलाव के लिए तो यह बहुत दिलचस्प चीज है। इनपर छोटे-छोटे कार्टून तो सैकड़ों बन चुके हैं। कई पूरी लंबी फ़िल्में भी बन चुकी हैं। हां तो, ग्रापको ग्रगर इन पात्रों से मिलना हो तो टिकट लेकर माइनिंग कार्ट पर बैठ जाइये। ग्राप विद्युत-शक्ति के सहारे ग्रपने-ग्राप एक गुफ़ा में पहुंच जायंगे। टेढ़े-मेढ़े रास्तों से जाते हुए ग्रापकी मुलाकात सात बौनों से हो जायगी। फिर यकायक

शैतान और बदमाश कुबड़ी (विकेड विच) सामने आ जायगी। आप सहम जायंगे; कहीं आपको छू न ले, क्योंकि अंग-संचालित करती हुई वह आपकी ओर बढ़ेगी। फिर स्नोव्हाइट से मुलाकात होगी। इस तरह अन्दर-ही-अन्दर खूब घूम-फिरकर आप बाहर आ जायंगे। गाड़ी चलाने का चक्र आपके हाथ में होते हुए भी गाड़ी पर आपका काबू नहीं रहता। अन्दर कहीं अंधेरा है, कहीं प्रकाश। अजीब-अजीब आवाजें सुनने को मिलती हैं। कौतूहल, भय और दिलचस्पी का अजीब मिश्रण हो जाता है यहां। इस प्रकार से और भी कई आश्चर्य-चकित करनेवाली गुफाएं हैं। 'एलिस इन वंडरलेंड-वाक थ्रू' भी देखने लायक है।

फेंटसीलैंड में 'मि० टोड ड्राइव थ्रू', 'मांस्ट्रो दि व्हेल' 'वाटर स्लाइड', 'फ्लाइंग एलीफंट', 'एरियल राइड', 'दि मॅड हंटर्स टी पार्टी', 'दि डोनाल्ड डॅक बंप्स, 'वाइल्ड लाइफ़ सर्कस ट्रेन', 'केसी जूनियर' आदि सारी जगहें मन को लुभानेवाली और दिल को प्रसन्न करनेवाली हैं।

फ्रंटियरलैंड पहुंचने के लिए एक पुराने किले से गुजरना पड़ता है। पास में डेवी क्राकेट का अजायबघर है। फ्रंटियरमेन साबर की खाल के कपड़े और कुनस्किन की टोपियां पहने दीखते हैं। बड़ी आलीशान बग्घियों में बैठकर आप रंगीन रेगिस्तान में से गुजरेंगे, जिसमें दीखेंगे रेड इंडियन, काउ बाय, पालतू ढोर, घोड़े इत्यादि। ऐसा लगता है, मानो ये सब सचमुच के ही हैं। एक जगह झोंपड़ी में आग लगी हुई थी, जो बिजली की मदद से बिल्कुल वास्तविक थी। कुछ आदमियों व जानवरों के पुतले धीरे-धीरे हिल रहे थे और हमें उनके सचमुच के होने का आभास हो जाता था। खास तरह से निर्मित एकसौ पांच फुट लंबा पानी में चलनेवाला 'दि मार्क ट्वेन' जहाज मानो अमरीका की किसी विशेष नदी में से चलता है, और न्यू ऑरलियन्स, नॅचेज़ व मोबाइल के कुछ भागों से गुजरता है।

एडवेंचरलैंड में पहुंचकर दक्षिणी समुद्रतट पर पहुंचने का आनन्द आ जाता है। यहां नारियल के पेड़ और हरियाली मन को मुग्ध कर लेती हैं। एक टेहिटियन गांव का निर्माण किया है, जिसमें बाजार लगा है। यहीं पर पांच एकड़ के अन्दर पानी के झरने और प्रपात हैं, जो दुनिया की

विभिन्न नदियों के आधार पर बनाये गए हैं। इसकी छटा बहुत ही मन-मोहक है। इच्छा होती थी कि बस देखते ही रहें। एक ट्रेन पर बैठकर इसका चक्कर लगाया जा सकता है। हमें यह इतना अच्छा लगा कि हमने इसके दो चक्कर लगाये।

बनावटी देहात के पास ही चक्करदार नदी थी। एक मोटर-बोट में बैठाकर दर्शकों को उसके चारों ओर ले जाया जाता है। दुनिया में अलग-अलग जगहों पर होनेवाले वृक्ष और पौधे किनारों पर दीखते हैं। हाथी, बाघ और अन्य जानवर आपकी तरफ घूरते हुए दिखाई देंगे। पानी में प्लास्टिक और तार के बने मगरमच्छ और जल-हाथी थे। वे आंखें घुमाते हैं, आपकी नाव की तरफ भागते हैं, मुंह भी खोलते हैं। अनायास हमारे मुंह से चीख निकल जाती, खासकर स्त्रियों के। नाव चलानेवाले के पास एक बन्दूक थी, जिसमें झूठमूठ के कारतूस थे। वह मगरमच्छ पर बन्दूक चला देता और नाव आगे बढ़ जाती। यह सब कुछ ऐसा लगता था मानों सचमुच में ही घट रहा हो। उस समय हम थोड़े सहम जाते थे। हां, बाद में तो खूब हँसते थे।

निस्संदेह डिसनीलैंड मानव-मस्तिष्क की एक अनूठी कृति है।

: १६ :

खेल-कूद

अमरीका में बास्केट बाल बहुत खेला जाता है। करीब-करीब हर स्कूल में छोटे-छोटे बच्चे, लड़कियां और लड़के सभी इसको खेलते हैं। हर कालेज और युनिवर्सिटी की अपनी-अपनी टीम होती है। उनमें आपस में जो मैच होते हैं, वे बहुत दिलचस्प और जोशभरे होते हैं। हजारों लोग इन्हें देखने आते हैं। स्टेडियम दर्शकों से भरे रहते हैं। टिकट मिलना मुश्किल हो जाता है।

वाशिंगटन में हमें भी इसी तरह के एक मैच को देखने का अवसर मिला। वहां के दो साथियों के साथ हम टिकट लेकर स्टेडियम में पहुंच गये। मैच नार्थ केरोलीना युनिवर्सिटी और स्थानीय मैरीलैंड युनिवर्सिटी के बीच था। एक तरफ तो केरोलीना की टीम थी, जो कि सारे देश में सबसे तगड़ी मानी जाती है। दूसरी तरफ स्थानीय टीम थी। इससे दर्शकों में बड़ा उत्साह था। अधिकतर लोग, स्वाभाविक रूप से ही, तालियां बजा-बजाकर स्थानीय टीम को उत्साहित कर रहे थे। लेकिन दर्शकों में नार्थ केरोलीना से आया हुआ व्यक्ति इस फिक्र में था कि वहीं की टीम जीते।

सारा खेल कुल मिलाकर ४० मिनट चला। २० मिनट के बाद ५ मिनट का मध्यांतर हुआ। स्टेडियम के बीच में एक बहुत बड़ी घड़ी लगी रहती है। यह हर क्षण यह बताती रहती है कि खेल खत्म होने में अब कितने मिनट और कितने सेंकड बाकी रहे। यह खेल बहुत ही तेज रफ्तार से और फुर्ती से खेला जाता है। गोल-पर-गोल होते रहते हैं। कुल मिलाकर ११-११ खिलाड़ी एक-एक टीम में होते हैं। एक बार में पांच-पांच खिलाड़ी खेलते हैं। दो रेफ्री होते हैं। एक खिलाड़ी थक जाय तो दूसरा खिलाड़ी उसकी जगह ले लेता है।

स्थानीय टीम भी बहुत अच्छा खेल रही थी, इसलिए खूब उत्साह से बार-बार तालियां बजाई जा रही थीं। लोग व्यवस्थित ढंग से तालियां बजायें, इसकी व्यवस्था रहती है।। एक बैंड रहता है और दोनों टीमों की तरफ से दस-बारह, नाच-नाचकर तालियां बजाने और उत्साह बढ़ाने-वाली लड़कियां रहती हैं। अपनी टीम की तरफ से गोल होते ही बड़ी फुर्ती से बैंड बज उठता है। ये लड़कियां भी तालियां बजा-बजाकर उछलने, कूदने और नाचने लगती हैं। यह संकेत मिलते ही सारे स्टेडियम के लोग भी उसमें शामिल हो जाते हैं। कुछ ही क्षणों में यह शोर-गुल एकदम रोक दिया जाता है, जिससे खेल की प्रगति में बाधा न हो।

यह खेल एक छोटे-से लकड़ी के बने प्लेटफार्म पर गेंद से खेला जाता है। गेंद हाथ से ही फेंकते रहते हैं। उसे करीब दस फुट ऊंचाई पर बनी हुई छोटी-सी जाली में डाल देने से गोल हो जाता है। जब गेंद एक खिलाड़ी के पास जाती है तब साधारणत: जबतक गोल नहीं हो जाता उसी-के साथियों के पास रहती है। कोई ज़रा-सी गलती करे तो पैनल्टी। गेंद को गोल में डालते हुए रोके तो दो पैनल्टी। दोनों टीमों की तरफ से एक-एक शिक्षक होता है। वही अपनी-अपनी टीम के खिलाड़ी के बारे में सब कुछ निश्चय करता है।

दनादन गोल हो रहे थे। केरोलीना जीत रही थी। स्थानीय टीम अपने से तगड़ी टीम के सामने खेलते हुए भी उससे बेहतर खेल रही थी। आधे समय तक केरोलीन ने ३७ गोल किये और मैरीलैंड ने २५। खेल के समाप्त होने में ६ मिनट शेष रह गये थे। गोल ५१ और ३६ हो गये थे। इस समय तक केरोलीना ने बहुत मौके खोये, कई पैनेल्टी के मौके भी बिगाड़े। मैरीलैंड ने एक के बाद एक कई गोल कर दिये। सामने की टीम घबरा गई। सारे दर्शक एकतरफा शोर मचा रहे थे। इसी बीच केरो-लीना के एक खिलाड़ी ने फाउल किया और रेफी से झगड़ने लगा। उस खिलाड़ी को खेल से निकाल दिया गया। इसमें ऑफसाइड नहीं होती। बॉल बाहर भी बहुत कम जाती है, क्योंकि बाहर जाने पर हाथ में आया हुआ मौका निकल जाने का डर रहता है। समय कम रह गया था और मैरीलैंड गोल-पर-गोल करने लगी। हर गोल पर १५

हजार लोगों से भरे हुए पूरे स्टेडियम के लोग खड़े होकर तालियां बजाते। आखिर मैरीलैंड आगे बढ़ ही गई और उसने केरोलीना को ६९-५१ से बुरी तरह हरा दिया। थोड़ी-सी देर में ही खेल का पूरा आनन्द आ गया।

बास्केट बॉल तो हमारे देश में भी काफी प्रचलित हो गया है। लेकिन यहां बेसबॉल नहीं खेला जाता है। अमरीका में तो मैदानी खेलों में यही खेल सर्वप्रिय हो गया है। अच्छा मैच हो तो हजारों-लाखों आदमी इसको देखने आते हैं। अच्छे दर्जे के खिलाड़ियों को हजारों लाखों रुपये की आय खेल की हर ऋतु में हो जाती है।

बेसबॉल के दो-एक अच्छे मैच अमरीका में तो देखे ही, लेकिन इसके पहले जापान में भी मैं देख चुका था। जापान के लोग भी इस खेल से बड़े प्रभावित हुए हैं। लड़ाई के बाद वहां अमरीका का असर हुआ, इसलिए भी इस खेल का वहां प्रवेश हुआ होगा। लेकिन अब तो वहां के नौजवान इसके पीछे पागल हो गये हैं। खूब शौक और उत्साह से खेलते हैं।

यह खेल आमतौर पर रात के ७.३० या ८ बजे शुरू होता है। खूब बड़े खुले स्टेडियम में बड़ी-बड़ी ज़ोरदार बत्तियों के प्रकाश में खेला जाता है। ऐसा लगता है मानों दिन के प्रकाश में खेल रहे हैं।

खेल बहुत फुर्ती के साथ खेला जाता है। बहुत जल्दी-जल्दी जोशीले और मजेदार क्षण आते रहते हैं। दर्शकों में उत्साह फैल जाता है और सारा स्टेडियम तालियों से गूंज उठता है। दो घन्टे में खेल खतम हो जाता है। इतने थोड़े समय में ही खेल का पूरा आनन्द आ जाता है। हमारे देश में तो अंग्रेजों की मेहरबानी से बेसबॉल की जगह क्रिकेट का अधिक प्रचार है। वैसे क्रिकेट भी एक अच्छा और दिलचस्पी खेल है, लेकिन मैं समझता हूं कि बेसबॉल के सामने उसकी कोई तुलना नहीं।

क्रिकेट तो पुराने जमाने के राजा-महाराजाओं और उनके साथियों के दर्बारियों का फुर्सत से खेलने का खेल है। पांच दिन तक और वह भी दिन-भर खेलना पड़ता है। खेल देखने के लिए दर्शकों को अपने दफ्तर का काम भी छोड़कर जाना पड़ता है। साधारणतः तो यह खेल एकदम ढीला और सुस्ती से खेला जाता है। कभी-कभी तो खेल का पूरा मजा ही तब आता है

जब पूरे दिन इस मौके की प्रतीक्षा में बैठे रहो। इसके विपरीत है बेसबॉल का खेल। दफ्तर का सारा काम करके, जल्दी खाना खाकर, रात को दो घंटे, जैसे सिनेमा जाते हैं उसी तरह खेल देखने जा सकते हैं। खेल प्रायः क्रिकेट के सिद्धान्त पर ही खेला जाता है, यद्यपि दोनों में जमीन आसमान का फ़र्क है। क्रिकेट के समान ही इसमें एक तरफ से एक आदमी गेंद फ़ेंकता है और दूसरी तरफ से डंडे की मदद से दूसरा आदमी उसे जोरों से मारने की कोशिश करता है। इसमें भी गेंद को मारकर 'रन' लेते हैं। बाकी खेल की गहराई में जायं तो बहुत अन्तर है। खेल की सूक्ष्म बारीकियों को समझने लगने पर खेल देखने का आनन्द कई गुना बढ़ जाता है।

मैं खुद ही क्रिकेट का प्रशंसक रहा हूं। मुझे खुद को भी क्रिकेट खेलने का शौक रहा। मैं अपने स्कूल में क्रिकेट की टीम का कप्तान भी था। लेकिन बेसबॉल का खेल देखकर मैं सचमुच बहुत प्रभावित हुआ। मेरी यह राय बन गई है कि हमें धीरे-धीरे क्रिकेट की जगह बेसबॉल को अपनाना चाहिए। शुरू-शुरू में जरूर कठिनाई होगी, जैसी कि हर नये काम के शुरू करने में होती है, लेकिन यदि हम दूर-दृष्टि से देखें तो बेसबॉल के आ जाने से हमारे नवयुवकों की खेल-कूद की दुनिया में बेहतरीन क्रांति होगी।

: १७ :

हॉलीवुड

हॉलीवुड तो सारी दुनिया में प्रसिद्ध है ही। हर व्यक्ति की जबान पर उसका नाम है। वहां की बनी फिल्मों को आज की दुनिया में कौन नहीं देखता? हम लोग बड़ी आशा और उत्साह से वहां पहुंचे। अमरीका के पश्चिमी किनारे पर स्थित लॉस एंजलस शहर में हम ठहरे हुए थे। वहीं से हॉलीवुड के लिए रवाना हुए। हमने सोच रखा था कि हॉलीवुड कोई खास जगह होगी, जहां एक ही जगह बहुत-से स्टूडियो बने होंगे। चारों तरफ फिल्म लेने का काम ज़ोरों से चल रहा होगा। लेकिन जब हम हॉलीवुड पहुंचे तो वहां का नज़ारा और ही था। हॉलीवुड तो लॉस एंजलस के अन्तर्गत स्थित एक बस्ती का नाम है। यह एक बड़ी बस्ती के भीतर ही दूसरी स्वतन्त्र बस्ती है। हॉलीवुड के पश्चिम में वेवरली हिल्स हैं, पूर्व में लॉस एंजलस है और उत्तर में सांता मोनी का पहाड़। हॉलीवुड बुलवार वहां का मुख्य रास्ता है, जो कि पूर्व से पश्चिम की तरफ जाता है। यहींपर वहां की बड़ी-बड़ी दुकानें, होटल, रेस्तरां, थियेटर्स, फिल्म-वितरण की व्यवस्था करने के दफ्तर आदि बने हुए हैं।

हॉलीवुड अन्य शहरों जैसा ही एक शहर है। बाहर से देखने में कुछ भी फर्क नहीं लगता। हालांकि फिल्म बनाने का सबसे बड़ा और नामी केन्द्र है, लेकिन जबतक स्टूडियो में न जाय तबतक इस बात का पता कैसे चल सकता है? बड़े-बड़े नामी अभिनेता और अभिनेत्रियां पास ही के वेवरली हिल्स पर अपने शानदार भवनों में रहते हैं।

१९११ तक तो हॉलीवुड लॉस एंजलस का एक उपनगर मात्र था। बाद में वहां बड़े-बड़े फिल्म स्टूडियो बनना शुरू हुए। धीरे-धीरे उसकी प्रसिद्धि और महत्व बढ़ता गया। आज तो उसकी अपनी सबसे अलग और निराली बस्ती हो गई है। हॉलीवुड के अधिकांश लोगों की जीविका किसी-

न-किसी रूप में वहां के फिल्म-उद्योग पर ही निर्भर है। सिनेमा-उद्योग से सम्बन्धित कई तरह के छोटे-मोटे उद्योग भी वहां बड़े विशाल पैमाने पर फैले हुए हैं। वाद्य-यन्त्र बनाना और उनसे संबंधित पुस्तकें छापने का भी वहां एक बड़ा केन्द्र हो गया है। रेडियो व टेलीविजन के लिए कार्यक्रम बनाना और ग्रामोफोन के रेकार्ड बनाने का काम वहां खूब होता है। आज-कल तो हॉलीवुड स्त्रियों की वेशभूषा में नये-नये फेशन और परिवर्तन लाने का एक मुख्य केन्द्र बन गया है।

हॉलीवुड में कुल इक्कीस स्टूडियो हैं। इसमें पेरामाउंट स्टूडियो सबसे प्रसिद्ध है। हम लोगों को प्रयत्न करने पर ही उसमें जाने की इजाज़त मिल सकी। स्टूडियो में जाने के बाद पहले तो हमने सारा स्टूडियो घूम-फिरकर देखा। जगह-जगह छोटे-मोटे दृश्य लगे हुए थे। कहीं देहात का दृश्य बनाया गया था तो कहीं रेड इंडियनों के उत्सव की तैयारियां हो रही थी। घुमा-फिराकर हमें एक बड़े कमरे के अन्दर ले जाया गया, जहां प्रसिद्ध अभिनेत्री सोफिया लोरेन अभिनेता एंथनी क्विन के साथ काम कर रही थी। एक कैरेवान का दृश्य था। बाहर ज़ोर की बारिश हो रही थी। एंथनी क्विन भीगकर एकदम तर-बतर हो गया था। कैरेवान का डब्बा छोटा था। उसमें सामान इतना अधिक भरा हुआ था कि आदमियों के लिए उठने-बैठने की जगह बहुत कम थी। सोफिया लोरेन को, जो बाहर भीग रही थी, वह बड़ी मुश्किल से भीतर लेने की कोशिश कर रहा था। कैरेवान भी अन्दर कई जगह से चू रहा था। यही एक छोटा-सा दृश्य था, जिसे कई बार लेना पड़ा। स्टूडियो तो स्टूडियो ही ठहरा! चाहे हॉलीवुड का हो चाहे हिन्दुस्तान का; चाहे छोटा हो या बड़ा। नाम तो बड़ा सुन रखा था, लेकिन जाकर देखने पर ऊंची दूकान पर फीके पकवान नज़र आये, कोई विशेष आकर्षण की चीज वहां नहीं दिखाई दी। उस समय किसी बड़े दृश्य का शूटिंग नहीं हो रहा था। शायद वैसा कोई दृश्य होता तो देखने में अधिक आकर्षक लगता। थोड़ी ही देर में हमारा जी ऊब गया। स्टूडियो के अन्दर घुटन व गर्मी से जी घबरा गया और इच्छा होने लगी कि जल्दी ही बाहर निकल चलें। पेरामाउण्ड स्टूडियो के मालिक, जिसने इसे शुरू में बनाया था,

उसके पौत्र ने सारा स्टूडियो हमारे साथ खुद घूमाकर दिखाया और सिनेमा तारकों से भी मिलाया।

जब सोफिया लोरेन और एंथनी क्विन से हमारा परिचय कराया गया तो वे दोनों ही बड़े प्रेम से मिले। दोनों ने हमारे साथ बड़ी खुशी से अपनी तस्वीरें खिचवाई। बाल-अभिनेत्री मार्गरेट ओब्रीयन भी वहीं पास में बैठी थी। उससे भी हम मिले। वह बहुत ही शर्मीली नज़र आई। ऐसा प्रतीत नहीं होता था कि हम लोग प्रसिद्ध अभिनेत्रियों से मिल रहे हैं। इन लोगों के नाम इतने मशहूर हो जाते हैं कि लोग इनको धीरे-धीरे दूसरी दुनिया से जमीन पर उतरकर आया हुआ चांद ही समझने लगते हैं। हमारे दिमागों में इन लोगों के बारे में अजीब-अजीब चित्र बनते जाते हैं। हम यह भूल जाते हैं कि ये लोग भी हमारे ही समान गोश्त और पोश्त के बने इंसान हैं, जिन्होंने एक विशेष कला में निपुणता हासिल की है। पर इनसे मिलने के बाद दिमाग में जो इस तरह की गलत धारणाएं बनी हुई थीं, वे अपने-आप दूर हो गई। बहुत दिनों से हॉलीवुड देखने और वहां के नामी अभिनेताओं से मिलने की जो लालसा थी, उसकी कुछ अंशों में पूर्ति हुई।

हॉलीवुड के फिल्म-निर्माताओं के पास पैसे की कमी नहीं है। वे बढ़िया-से-बढ़िया सेट बना सकते हैं। देश के सर्वश्रेष्ठ फोटो लेनेवाले तकनीकी माहिर उनको प्राप्त हैं। इन सब सुविधाओं के साथ-साथ वहां लोग मेहनती भी हैं। इसलिए दुनिया की अच्छी-से-अच्छी फिल्में वहां तैयार होती हैं।

फिल्म की शूटिंग डायरेक्टर जार्ज कुकर कर रहे थे। हमें उनसे भी थोड़ी बात-चीत करने का मौका मिला। वह भारत के प्रति बहुत आकर्षित हैं। इसी वजह से वह स्वतः भारत आये थे और उनकी बहुत इच्छा थी कि उनकी फिल्म 'भवानी-जंकशन' भारत में बनाई जाय। इसके लिए उन्होंने पहले से तैयारी भी कर ली थी, लेकिन किसी वजह से भारत सरकार ने इनको इस फिल्म को बनाने की इजाजत नहीं दी। इसका उन्हें बड़ा अफसोस रहा। वह इस बारे में भारत सरकार की नीति से खुश नहीं थे और उन्हें समझ में भी नहीं आया कि उन्हें इजाजत क्यों नहीं दी गई। बाद में उन्होंने इस फिल्म को पाकिस्तान में जाकर बनाया। फिल्म की कहानी में

भारत के प्रति कुछ अपमानजनक बात होती तो उसे शायद दूर किया जा सकता था। सहानुभूतिपूर्वक विचार करके और आपस में सहृदयता से बातें करके इस तरह के मतभेद आसानी से दूर किये जा सकते हैं। यदि हॉली-वुड के फिल्म-निर्माता व निदेशक भारत में आकर फिल्में बनायें तो यह हिन्दुस्तान के फायदे की चीज़ होगी। हमारे देश का प्रचार भी होगा और विदेशी पूंजी भी यहां आयेगी। हां, हमें इस बात का जरूर ध्यान रखना चाहिए कि वे हमारे देश के लोगों का और हमारे जीवन का गलत दिग्दर्शन न करने पावें।

: १८ :

नियाग्रा प्रपात व वापसी

नियाग्रा प्रपात के इर्द-गिर्द इसी नाम का एक शहर ही बस गया है, जिसकी आबादी लगभग एक लाख है। इसका एक हिस्सा अमरीका के न्यूयार्क-स्टेट में है और बाकी का हिस्सा कनाडा में है। नियाग्रा प्रपात अब धीरे-धीरे एक छोटा-मोटा औद्योगिक केन्द्र बनता जा रहा है। इन झरनों से विद्युत-शक्ति पैदा होती है, जो उत्तरी अमरीका में सबसे ज्यादा परिमाण में है। यहां से उत्पन्न बिजली तमाम न्यूयार्क व पेनसिलवेनिया स्टेट्स के कल-कारखानों व घरेलू उपयोग के लिए पर्याप्त होती है। साथ ही कनाडा के ओंटारियो प्रांत को भी यहीं से बिजली पहुंचाई जाती है।

यहां कागज और कागज से बनी चीजों की फैक्टरियां अधिक हैं। कार-बन, ग्रेफाइट, एब्रेज़िव, स्टोरेज, बेकरी और खाद्य-सामग्री के कारखाने भी बड़ी संख्या में लगाये गए हैं।

फादर लूई हेनप्री सम्भवतः इतिहास के प्रथम व्यक्ति हैं, जिन्होंने सन् १६७८ में नियाग्रा प्रपात का दर्शन किया। धीरे-धीरे इस प्रदेश का विकास होता गया और इन सुन्दर झरनों के प्रति वहां के लोगों का आकर्षण बढ़ता गया। सन् १८१६ में अमरीका और कनाडा ने जब नियाग्रा नदी को अपने दोनों देशों के बीच की सीमा-रेखा निश्चित किया तब इसका महत्व और भी बढ़ गया।

नियाग्रा नदी के ऊपर पहला पुल १८४८ के करीब प्रपात से एक मील नीचे की तरफ बनाया गया। अब उसी नदी पर बारहवां पुल १६४१ में बना है। लोग इसे शौक से 'रेनबो' (इंद्रधनुष) पुल कहते हैं। विद्युत-शक्ति पैदा करने का काम सन् १८५२ में शुरू हुआ और नियाग्रा प्रपात के गांव में सबसे पहले सन् १८८१ में बिजली आई। विद्युत-शक्ति पैदा करने का परिमाण बढ़ता ही गया और आज दुनिया में यह प्रपात जल-विद्युत-शक्ति

बनाने का बड़ा साधन बन गया है।

नियाग्रा प्रपात अमरीका और कनाडा के मध्य में स्थित होने की वजह से अमरीका से कनाडा आने-जानेवालों के लिए एक तरह का प्रवेशद्वार (गेटवे) बन गया है।

इन प्रपातों की वजह से यह प्रदेश, नैसर्गिक सौंदर्य में दुनिया में एक अनूठा स्थान रखता है। इन झरनों को देखने के लिए दुनिया के हर प्रदेश से बड़ी-बड़ी संख्या में प्रवासी लोग नित्य प्रति आते ही रहते हैं। अमरीका में जिन लोगों की नई-नई शादियां होती है, उनके लिए तो यही स्थान नन्दन कानन के समान है। प्रथम मिलन की चन्द रातें प्रेमी-युगल यहां के सुरम्य वातावरण में मेह की फुहारों में भीगकर बिताना चाहते हैं। यहां आकर दुनिया की सारी चिन्ताओं को भूलकर, अपने सुदीर्घ भावी जीवन को एक दूसरे की संगति में सफलतापूर्वक बिताने की पक्की बुनियाद इसी प्रपात की साक्षी में रखी जाती है।

भारत से अमरीका जाने के पहले ही नियाग्रा प्रपात की प्रसिद्धि हममें से सभी लोगों ने बहुत-कुछ सुन रखी थी। सभीको वहां जाने का अतीव उत्साह भी था। इसलिए जब अमरीका के साथियों ने हमसे पूछा कि आप अमरीका में क्या-क्या देखना चाहेंगे तो हमने सहज ही नियाग्रा प्रपात का नाम भी सूचित किया। हमें यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि जो कार्यक्रम उन्होंने हमारे लिए बनाया था, उसमें नियाग्रा प्रपात की सैर को वे भूले नहीं थे।

हमारा पूरा प्रतिनिधि-मण्डल डेट्रोइट से हवाई जहाज से रवाना होकर बफेलो हवाई अड्डे पर पहुंचा। वहां पूर्व-योजना के अनुसार हमें लेने के लिए एक खासी बड़ी मोटर आ गई थी। उसका चालक अच्छा-खासा तजुर्बेकार गाइड भी था। बफेलो से नियाग्रा प्रपात जाते समय रास्ते भर वह आस-पास के प्रदेश का परिचय भी कराता जाता था। बीच-बीच में गप्पों के गोले छोड़ता हुआ वह हम लोगों का मन-बहलाव भी कर रहा था। जाते-जाते रास्ते में हम लोग एक खूब लम्बे बगीचे के पास से गुजरे। हमें उस बगीचे में कोई विशेषता नहीं दिखाई दी। समूचा बाग एक मामूली-सी दीवार से घिरा हुआ था।

एकाएक हमारा वह गाइड उत्तर की तरफ इशारा करके कहने लगा कि वहां वह स्थान बहुत ही प्रसिद्ध है। प्रत्येक स्त्री पुरुष यहां आने के लिए जान देता है। हम सब लोग आश्चर्य-चकित होकर उधर देखने लगे। हमारी समझ में कुछ नहीं आया, क्योंकि वहां न तो कुछ ऐसी विशेषता दिखाई देती थी और न इस स्थान के बारे में हम लोगों ने पहले कुछ सुना ही था। उसने मुस्कुराते हुए कहा कि यह स्थान वहां का बड़ा कब्रिस्तान है और हर आदमी एक-न-एक दिन मरता ही है और मरकर यहां आता ही है। उसने इस मामूली-सी बात को इस ढंग से कहा कि हम सभी लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

वह गाइड काम निकालने में भी बड़ा होशियार था। हम लोगों में से एक-दो व्यक्तियों के पास कनाडा की हद में जाकर वापस आने का वीसा नहीं था। प्रयत्न करके इसकी भी उसने इजाजत दिलवा दी। चूंकि कनाडा की तरफ के झरने ज्यादा सुन्दर थे, हमें अपने साथियों में से कुछको अमरीका की हद में छोड़कर जाने में बड़ा संकोच हो रहा था।

जब हम नियाग्रा प्रपात पहुंचे तो वहां की सुन्दरता देखते ही बनती थी। वहां के दृश्यों का वर्णन करना आसान नहीं है। दुनिया में सैकड़ों-हजारों झरने हैं। उनमें से कई तो बड़े मशहूर भी हैं, लेकिन इन झरनों की बराबरी शायद ही कोई करता हो।

प्रकृति ने तो इस प्रपात को एक ही बनाया था, किंतु मनुष्य ने इसे दो देशों में, दो हिस्सों में बांट दिया। कनाडा की ओर का जो अधिक सुन्दर हिस्सा है, उसे 'घुड़नाल' नाम दिया गया है, क्योंकि इस झरने का आकार घोड़े की नाल सरीखा ही है। यह झरना नियाग्रा नदी के बीच कनाडा की हद की तरफ स्थित है। हर मिनट करीब पाँच लाख टन पानी ऊपर से नीचे गिरता है। इसीसे इस झरने की विशालता का अंदाजा लगाया जा सकता है। घुड़नाल-झरना १५९ फुट ऊंचा है और उसकी अधिक-से-अधिक चौड़ाई २९५० फुट है। मुख्य बड़ा झरना तो पहले कनाडा की तरफ बीच नदी में गिर जाता है, फिर इसीका एक हिस्सा थोड़ा आगे जाकर अमरीका की हद में एक घुमाव लेकर नीचे बहती हुई मूल नदी में गिरता है। केवल अमरीका की तरफ से इस झरने को पूरा-पूरा नहीं देख सकते।

अमरीकी झरना १६७ फुट ऊंचा और करीब १४०० फुट चौड़ा है, लेकिन इसमें जो पानी गिरता है, उसका परिमाण अपेक्षाकृत कम है ।

कनाडा की तरफ झरनों के इर्द-गिर्द खूब सुंदर बाग-बगीचे लगा दिये गए हैं । यात्री लोग बड़े शौक से झरनों के आस-पास इन बगीचों में घूमते हैं । फोटो लेनेवालों को तो मनचाही मुराद मिल जाती है । झरनों को भिन्न-भिन्न रुखों से देखने के लिए विशेष स्थान बने हुए हैं, ताकि उसके हर पहलू को, हर रुख से देखकर उसका पूरा आनंद लूटा जा सके । एक जगह लिफ़्ट में बैठाकर नीचे ले जाया जाता है । वहां आपको बरसाती कोट और रबर के लंबे जूते पहनाकर झरनों के नीचे की तरफ ले जाया जायगा । आपकी आंखों के सामने से झरनों का पानी खूब जोरों से और बहुत नज़दीक से गिरता दिखाई देगा । ठंड के दिन हों तो बीच-बीच में बर्फ के बड़े-बड़े खंड जोरों से आवाज करते हुए एक के बाद एक गिरते रहते हैं । जहां से आप यह दृश्य देखते हैं, वहां पानी की फुहार उड़ती ही रहती है । यदि आप बरसाती न पहने हों तो एकदम भीग जायं ।

शाम को इन झरनों पर, खास करके कनाडा की तरफ के, झरनों पर, बिजली की रंग-बिरंगी बत्तियों का प्रकाश डाला जाता है । उस समय के दृश्य की कल्पना से ही मन मुग्ध हो जाता है, लेकिन हम इस दृश्य को देखने से वंचित ही रहे, क्योंकि समय की कुंजी हमारे हाथ में नहीं थी । हमारा सारा समय पहले से बंधा हुआ था इसलिए हमें शाम का दृश्य देखे बिना ही लौट आना पड़ा ।

वहां का दृश्य हमें इतना अच्छा लगा था कि शाम को रंग-बिरंगे प्रकाश में उस दृश्य को देखने का आकर्षण हम रोक नहीं सके । इसलिए जब हमारे प्रतिनिधि-मंडल की यात्रा पूरी हो गई तब हमने कनाडा जाने से पहले फिर से एक बार वहां जाने का तय किया । इस बार हम लोगों ने कनाडा की तरफ, जल-प्रपात के पास ही बने हुए एक सुंदर होटल में पूरी रात बिताई । इस होटल से भी इस प्रपात का सुंदर दृश्य दिखाई देता है । होटल की सबसे ऊंची मंजिल पर एक रेस्तरां बना हुआ है । इसमें बड़ी भीड़ लगी रहती है । हमने भी नियाग्रा के मनोरम दृश्य को देखते हुए वहां खाना खाया ।

वहां आने का पूर्ण आनन्द अब मिला। बीच-बीच में कुहरा छा जाता था और पूरा दृश्य ढंक जाता था, पर थोड़ी देर में खुल भी जाता था। इस आंखमिचौनी के खेल को देखते हुए कितनी रात होगई, इसका हमें ज़रा भी भान नहीं रहा।

नियाग्रा नदी के उत्तरी किनारे पर एक बड़े ज़ोर का भंवर है। यह भी जगत्प्रसिद्ध है। यहां पानी का प्रवाह इतने ज़ोर का है कि नदी ने चट्टान को काटकर अपने लिए एक गोल रास्ता बना लिया है। दुनिया की किसी भी नदी में इतनी तेज गति से पानी नहीं गुजरता। नदी बल खाकर अर्ध-चंद्राकार रूप में यहां से मोड़ लेती है। इस घुमाव पर पानी इतने जोर-शोर के साथ गरजते हुए बहता है कि वह दृश्य भी बड़ा आकर्षक हो गया है। इस भंवर के ऊपर रस्सों का दोलन-पुल नदी के आर-पार बना दिया गया है। इसपर एक डब्बे में बैठकर लोग नदी के आर-पार जाते हैं। रास्ते में भंवर का दृश्य खूब अच्छी तरह दिखाई देता है।

अमरीका की सीमा के बाहर कनाडा में पैर रखते ही पता चल जाता है कि हम अमरीका से बाहर आ गये हैं। यद्यपि यह देश अमरीका से एक-दम लगा हुआ है, फिर भी वहां की अपेक्षा यहां के लोग गरीब हैं। हां, भारत की तुलना में तो जरूर मालदार हैं। इतने नजदीक होते हुए भी अमरीका व उनके देश में इतना अंतर होगा, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती थी। कनाडा में पहुंचकर ज्योंही वहां के होटल में गये, हमें एकदम परिवर्तन दिखाई दिया। कुछ जाने-पहचाने रीति-रिवाज व व्यवहार वहां दीख पड़े। वहां बटलर व बैरे अपनी चुस्त पोशाक में बड़ी नम्रता से पेश आते हैं। अमरीका में यह बात बिल्कुल नहीं है। कनाडा में, अंग्रेजों का प्रभाव होने की वजह से, जैसे अंग्रेजों के जमाने में हमारे देश में प्रथाएं बढ़ गई थीं, वैसी ही हालत वहां भी है। आज भी इंगलैंड में राजसी ठाठ की जो परंपरा है, कनाडा में भी उसकी कुछ-कुछ झलक देखने को मिलती है।

कनाडा की राजधानी तो ओटावा है, लेकिन वहां का सबसे बड़ा नामी और औद्योगिक शहर मोंट्रियल है। शहर काफी बड़ा है और आधु-निक साधनों से पूर्ण है।

वाशिंगटन में 'इंटरनेशनल चेंबर ऑव कामर्स' की मीटिंग में हम

लोग शामिल हुए तब कनाडा के एक प्रतिष्ठित व्यापारी से हमारी दोस्ती हो गई थी। उसने हमारी बड़ी खातिर की, अपनी गाड़ी भेजकर हमें सारा शहर घुमाकर दिखलाया और अपने घर पर बुलाकर हमारा आतिथ्य-सत्कार भी किया। श्री जी. डसरोसियर्स बड़े भले आदमी थे। लेकिन वहां के जीवन की व्यस्तता की वजह से शहर की सैर के समय वह खुद हमारे साथ नहीं आ सके। हमारे यहां इस तरह के विदेशी मेहमान आव तो हम खुद उनके साथ जाकर उनको अपना शहर आदि बताना पसंद करते हैं, लेकिन इसके लिए उनके पास समय कहां? इस कारण उन्होंने इस बात का इत्मिनान कर लिया था कि जो ड्राइवर हमें दिया गया, वह बहुत होशियार हो। ड्राइवर ही ने सारा शहर हमें अच्छी तरह से घुमाकर दिखा दिया और जब हम उनके घर पर गये तब वहां भी वह हर तरह से अपने मालिक की मदद कर रहा था। अपने मालिक के साथ हम लोगों की तस्वीरें आदि भी उसीने, अपने मालिक के कहने पर, उतारीं। चाय, नाश्ता वगैरह पेश करने में भी उसकी काफी मदद रही। और साथ ही चायपान में भी उसने हमारा हाथ बटाया।

उसीने हमें बताया कि कुछ ही दिनों बाद २६ जून, १९५९ को इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ तथा अमरीका के प्रेसिडेंट आइजनहोवर द्वारा सेंट लारेंस के बृहत् जलमार्ग का उद्घाटन हो रहा है। यह २३०० मील लंबा जलमार्ग सेंट लारेंस झील की अतलांतिक महासागर से मिलता है। इस जलमार्ग से बड़े-बड़े जहाज, जिन्हें पहले घूमकर कनाडा जाना पड़ता था, अब पांचों झीलों में होकर अतलांतिक तक पहुंच सकते हैं। इससे कनाडा और अमरीका का सहयोग और अधिक बढ़ेगा और इन दोनों देशों की मित्रता सुदृढ़ होगी। इसपर जो बिजलीघर है, उससे १८८०,००० किलोवाट बिजली तैयार होगी, जिससे कनाडा में विकास की कई योजनाएं सफलतापूर्वक आगे बढ़ सकेंगी।

कनाडा के इस प्रवास में हम लोग मोटर से काफी घूमे। नियाग्रा प्रपात से मोंट्रियल तक मोटर से ही गये थे। गुजरते समय हमें बराबर यह प्रतीत हो रहा था कि हर तरह से अमरीका और वहां के प्रदेश में बड़ा अंतर है। उनके रहन-सहन के अलावा उनके मकानात, वेशभूषा आदि भी

भिन्न हैं। औद्योगीकरण अपेक्षाकृत बहुत कम है और खेती अधिक पैमाने पर होती है। उसका असर वहां के लोगों के रोजमर्रा के जीवन पर और दृष्टिकोण पर पड़ना स्वभाविक है। इसी वजह से दोनों देशों के बीच इतना अधिक अंतर दिखाई देता है। वहां के एक टैक्सी ड्राइवर ने अपने रोजमर्रा के जीवन का किस्सा सुनाया। वह पाठकों के लिए रोचक होगा। वहां एक नई टैक्सी के लिए करीब ७००० डालर खर्च करना पड़ता है। ३००० डालर तो गाड़ी की कीमत होती है। इसके अलावा ३५०० डालर के करीब पगड़ी का अलग से देना पड़ता है। टैक्सी चलाने का अनुमति-पत्र लेने के लिए काले बाजार में यह कीमत देनी पड़ती है। बाकी करीब ३०० डालर टैक्सी के मीटर और रेडियो आदि का होता है। यह ड्राइ-वर डायमंड कंपनी का नौकर था। इसकी कंपनी इस तरह की १७०० टैक्सियां चलाती है। हर टैक्सी में टेलीफ़ोन लगा रहता है और वह हर समय अपने अड्डे से बातें करता रहता है। वह इस समय कहां है, कहां से कहां की सवारी उसे मिली है, यह खबर वह बराबर अपने अड्डे पर देता रहता है। अड्डे से भी उसे सूचना मिलती रहती है कि यदि वह खाली हो तो उसे कहां जाना चाहिए। दिनभर में जो कमाई होती है, उसका ४०% और जो बख़्शीश मिलती है वह, ड्राइवर की कमाई है। हर ड्राइवर एक घंटे में करीब १ डालर कमा लेता है। प्रतिदिन करीब १४-१५ घंटे काम करता है। उसने कहा कि कम-से-कम १८० डालर प्रति माह की कमाई तो होनी ही चाहिए, नहीं तो वह अपने कुटुंब के रोजमर्रा का खर्च भी ठीक से नहीं चला सकता। टैक्सियां २४ घंटे चलती हैं। एक पाली होती है सुबह ७ बजे से शाम को ५ बजे तक और दूसरी होती है शाम के ५ बजे से सुबह ७ बजे तक। रात को टैक्सियाँ कम चलती हैं।

हम लोग कनाडा में कुल तीन-चार दिन रहे, फिर लंदन होते हुए हमने घर की राह ली। कनाडा में रहते हुए हमें ऐसा लगता रहा कि हम इंग-लैंड के ही किसी एक प्रदेश में रह रहे हैं। भारत में अंग्रेजों ने जिस तरह का वातावरण पैदा किया था, उसी तरह का परिचित वातावरण कनाडा में दिखाई दिया। हां, अपेक्षाकृत कनाडा में धन-धान्य और जीवन-स्तर काफी ऊंचा है।

इस तरह करीब तीन महीने अमरीका और कनाडा में बिताकर हम लोग घर लौट रहे थे। अतलांतिक महासागर के पार की दुनिया का यह हमारा पहला अनुभव था। हमारा वहां रहना-सहना, लोगों से मिलना और अनेक सुंदर-सुंदर स्थानों को देखना, यह सारा अनुभव बहुत समृद्ध रहा। जीवन में आगे चलकर यह बड़ा उपयोगी साबित होगा, इसमें कोई संदेह नहीं। अमरीका में आने से पहले हमारे सामने उस देश का जो चित्र था उसमें कई बातें सही निकलीं, कई बातें ग़लत। अधिक बातें कमोबेश ठीक ही निकलीं। यह मेरी खुशनसीबी है कि अपनी आंखों से ये सारी चीजें देखने का महत्वपूर्ण और सुखकर सुअवसर मिला।

मित्रों के सहयोग से इतने थोड़े समय में अधिक-से-अधिक जितना देखा जा सकता था, उसे देखने का हमें मौका मिला। उसके लिए 'याक' और अन्य तमाम साथियों के हम बहुत ही आभारी हैं।

: परिशिष्ट :

'इंटरनेशनल चेम्बर ऑव कामर्स' का १७ वां जलसा

हमारे युवक-प्रतिनिधि-मंडल की औपचारिक यात्रा समाप्त होने के कुछ ही दिनों बाद वाशिंगटन में 'इंटरनेशनल चेम्बर ऑव कामर्स' का १७ वां जलसा होने जा रहा था। उसकी भारतीय कमेटी ने मुझे भी इस कांग्रेस का, भारत की ओर से, एक प्रतिनिधि बना लिया। इस कारण इसके जलसे में भाग लेने का मौका मिल गया।

इस कांग्रेस का मुख्य विषय था—"व्यापारियों को आधुनिक युग की चुनौती—राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय मामलों में उनके दायित्व।" विषय बहुत ही सोच-समझकर, समयानुकूल रखा गया था और बड़ा उपयुक्त रहा। आज की दुनिया में व्यापारियों की जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है। उनका क्षेत्र सिर्फ व्यापार करना और पैसा कमाना ही नहीं रह गया है, बल्कि उनकी प्रवृत्तियों का प्रभाव दुनिया के राजनैतिक क्षेत्रों में पड़ता है और दुनिया में हर कहीं बसनेवाले लोगों पर उसकी प्रतिक्रिया होती है। इस विषय पर आइ. सी. सी. के सभापति जी श्री ई. जी. डेस्टेंज ने शुरू में बड़ा सुन्दर भाषण दिया और सारी कान्फ्रेंस के लिए एक धारा निश्चित कर दी।

इस कांग्रेस में भाग लेने के लिए दुनिया के हर हिस्से से विशिष्ट व्यक्ति आये थे। बड़े-बड़े उद्योगों के प्रेसिडेंट और मैनेजिंग डाइरेक्टर थे। अपने-अपने देश के संबंधित सरकारों के प्रतिनिधि थे और बैंकों, बीमा-कंपनियों आदि के उच्च-से-उच्च अधिकारी भी सम्मिलित हुए थे। जर्मनी के क्रप संगठन के श्री कार्ल, ड्यूस्च बैंक के डाइरेक्टर डा० पॉल, ग्रेट ब्रिटेन के इंटरनेशनल चेम्बर ऑव शिपिंग के चेयरमैन सर स्केलटन,

लिवरपूल स्टीमशिप ओनर्स असोसियेशन के चेयरमैन श्री रिगबी, इम्पीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज़ (न्यूयार्क) के प्रेसिडेंट श्री गॅविन, लॉइड्स बैंक के डिप्टी चैयरमैन सर जेरेमी रेज़मन, ब्रिस्टल मार्यस कंपनी के सीनियर वाइस प्रेसिडेंट श्री ब्रिस्टॉल, रेडियो कॉरपोरेशन ऑव अमरीका, फ़र्स्ट नेशनल सिटी बैंक ऑव न्यूयार्क व चेंज़ मैनहट्टन बैंक संस्थाओं के वाइस प्रेसिडेंट, नेशनल बैंक ऑव वाशिंगटन के प्रेसिडेंट, इस तरह बड़े-से-बड़े व्यापारी और औद्योगिक संस्थाओं के सभापति सैकड़ों की संख्या में वहां उपस्थित थे।

भारत से 'फेडरेशन ऑव इंडियन चेम्बर्स ऑव कार्मस' के सभापति श्री मदनमोहन रुइया हमारे नेता थे। श्री के. पी. गोयनका, श्री भरत राम, सिंदिया के श्री कुमाना, मुकन्द आयर्न एंड स्टील वर्क्स के श्री वीरेन शाह आदि मिलकर कुल पंद्रह प्रतिनिधि थे।

आइ. सी. सी. के नेताओं और प्रतिनिधियों के अलावा, जिन्होंने विशेष भाषण दिये उनमें श्री लुई स्ट्रॉस, अमरीका के वाणिज्य मंत्री; श्री पॉल हॉफ़मैन, यू. एन. स्पेशल फंड फॉर इकनोमिक डेवलपमेंट के मैनेजिंग डाइरेक्टर; श्री हेनरी लूस, 'टाइम' अखबार के मुख्य संपादक; सर डेनिस राबर्टसन, केम्ब्रिज यूनिवर्सिटी के राजनीति व अर्थशास्त्र के प्रोफेसर; इन्टरनेशनल मॉनीटेरी फंड के मैनेजिंग डाइरेक्टर श्री जॉकबसन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

इस कांग्रेस को अमरीकी सरकार की पूरी मान्यता थी। अमरीका के तत्कालीन प्रेसिडेंट श्री आइसनहोवर ने स्वयं आकर अपना संदेश सुनाया। उन्होंने अपने संदेश में कहा कि आज व्यापारी और उद्योगपतियों के सामने सबसे बड़ी चुनौती है। आई. सी. सी. जिस खुले बाजार की नीति का पक्षपाती है, वह नीति सफलतापूर्वक, दुनिया में प्रचलित अन्य किसी भी नीति की बनिस्बत, अधिक उत्पादन करने में समर्थ है, इसे दुनिया को बता देना होगा। उन्होंने आगे कहा कि अनेक देशों के बीच व्यापारिक संबंध स्थापित होने से व्यापार के साथ ही आपस में शान्ति और दोस्ताना संबंध कायम हो जाता है। उनके भाषण के बाद ही, इस बार एक नई योजना की गई। अमरीका के सीनेट के पांच सदस्य और पार्लमेंट के छः सदस्यों

को पहले से निमंत्रित करके एक साथ बुला लिया गया था। वे वहां की राजनीति में अपने-अपने क्षेत्र के नामी नेता थे, जो कि अलग-अलग पार्टी के नुमाइन्दे थे। उन लोगों से प्रतिनिधियों ने खुलकर प्रश्न पूछे। उन्होंने बड़ी सफाई से, बिना किसी संकोच के, सारे सवालों के जवाब दिये। उनमें कई प्रश्नों पर मतभेद था। उसको छिपाने की उन्होंने कोई कोशिश नहीं की। जिसको जो उचित लगा, उसने वही स्पष्ट रूप से कहा। यह ख्याल नहीं किया कि सारी दुनिया के उद्योगपति इकट्ठे हैं तो उनके सामने अपने देश के आपसी मतभेदों को क्यों प्रकट करें।

नये-नये राष्ट्र उद्योगों में प्रगति कर चुके हैं। ऐसे राष्ट्रों के साथ किस तरह मिल-जुलकर काम कर सकते हैं, इसके बारे में श्री भरतराम ने हमारी ओर से अपने विचार प्रस्तुत किये। उन्होंने कहा कि जो देश अपनी पूंजी पिछड़े हुए देशों में लगाते हैं, उनकी सरकारों को चाहिए कि वे अपने व्यापारियों को बढ़ावा दें और उनकी पूजी के ऊपर लगाये हुए करों में कमी करें।

सिंदिया के श्री कुमाना और श्री झवेरी ने भी विचार प्रकट किये। उनके भाषणों का सार यह था कि हमारे विदेश जानेवाले जहाजों में व यूरोपीय कम्पनियों के जहाजों में किसी तरह का भेदभाव नहीं होना चाहिए।

सम्मेलन के अन्य महत्व के विषय, जिनपर उपयोगी चर्चा हुई, निम्नलिखित थे।

१. विश्वव्यापी-विक्रय—उच्चस्तरीय व्यवस्थापकीय उत्तरदायित्व

२. विकासशील राष्ट्र—साझेदारी में अगला कदम

३. मुद्रा की स्थिरता और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में व्यापारी-वर्ग का दायित्व

४. राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कार्यों में व्यापारी-वर्ग का उत्तरदायित्व

५. बदलती दुनिया में माल-वहन की नीति

६. व्यापार की स्वतन्त्रता में व्यापारी-वर्ग का उत्तरदायित्व

उपरोक्त विषयों को देखकर पाठकों को पता चल सकता है कि सारी चर्चा कितनी महत्वपूर्ण और उपयोगी हुई होगी। मुझे मई, १९५५

में टोकियो में हुये आइ. सी. सी. के १५वें जलसे में भी उपस्थित रहने का
अवसर मिला था। तब भी मुझे लगा और वाशिंगटन में मेरी धारणा
और भी पक्की हुई कि हमारे देश के उच्चस्तर के व्यापारी और उद्योग-
पतियों को स्वयं आगे आकर इस सम्मेलन में अधिक हिस्सा लेना चाहिए।
अपने आदमियों के भरोसे न रहकर अधिक संख्या में वे स्वयं जायं,
जिससे इस कान्फ्रेंस में वे अच्छा योगदान कर सकें और हमारे
देश का नाम ऊपर उठा सकें। इतना ही नहीं, उससे अनेक प्रकार का
व्यापारिक लाभ भी हमारे देश को और यहां के उद्योगपतियों को मिल
सकता है। विदेशी सरकार से भी हमें सुविधाएं चाहिए तो इसमें ये
सम्मेलन सहायक हो सकते हैं। आज जबकि हमारा देश अधिकाधिक
उत्पादन में लगा है और विदेशों से संपर्क स्थापित करके नये-नये उद्योग
बढ़ा रहा है, ऐसे अवसर पर बड़े-बड़े उद्योगपतियों का ऐसी सभाओं में
जाना बहुत जरूरी है। भारत सरकार को भी चाहिए कि जिस तरह अन्य
देशों की सरकारें अपने यहां के 'चेम्बर्स ऑव कामर्स' और उनके फेडरेशन
की राय को महत्व देती हैं, उसी तरह से उद्योगिक क्षेत्रों में यहां भी दिया
जाय और उनके भी नुमाइन्दों को आई. सी. सी. में भाग लेकर अपने देश
की औद्योगिक प्रगति में लाभ पहुंचाना चाहिए।

सम्मेलन के साथ-साथ प्रतिनिधियों ने एक लंबा-चौड़ा कार्यक्रम
बना दिया था। प्रतिनिधियों की स्त्रियों के लिए अलग कार्यक्रम था।
उनकी जिसमें रुचि हो वहां उनको ले जाने का व्यवस्थित प्रबंध था।
पार्टियां और स्वागत-भोज तो रोज होते ही थे। अलग-अलग देशों के
दूतावासों की तरफ़ से भी स्वागत का आयोजन किया जाता था। एक
रोज शाम को अमरीका के कामर्स और स्टेट डिपार्टमेंट की तरफ़ से सब
प्रतिनिधियों के स्वागत-समारोह एवं भोज का आयोजन किया गया था।
स्त्रियों के कार्यक्रम में एक दिन उन सबको श्रीमती ड्वाइट आइजनहोवर
ने ह्वाइट हाउस में निमंत्रित किया था। इस तरह २० अप्रैल से २५ अप्रैल
तक छः दिन का यह सम्मेलन बहुत व्यस्त और उपयोगी साबित हुआ।

चर्चाओं के बीच सेक्रेटरी ईज़मेन ने बताया कि पिछले [illegible] ास
सालों में जबसे 'इंटरनेशनल चेंबर ऑव कॉमर्स' ने सर्वप्रथम यह काम अपने

हाथ में लिया है कि वह विश्व के आर्थिक मसलों पर व्यापारी वर्ग की तरफ से बोले, तबसे समाज का राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचा बिल्कुल बदल गया है। पहले की अपेक्षा अब राज्य सरकारों ने अधिक व्यापक जिम्मेदारियां और शासन-शक्ति को अपने हाथ में ले लिया है, विशेष तौर पर जीवनस्तर बढ़ाने, बेरोजगारों को रोजगार देने के स्तर को बढ़ाने और समाज-कल्याण एवं आर्थिक विकास के मामलों में।

इस मौके पर कांग्रेस का जमा होना विश्व के व्यापारी वर्ग के लिए बहुत ही महत्व का विषय था कि वह अपनी जिम्मेदारियों का लेखा-जोखा ले ले और भावी निर्णय लेने के लिए भूमिका तैयार कर ले। सम्मेलन ने व्यापारी-वर्ग के सामने विश्वव्यापी परिवर्तनों के कारण, चाहे वे भले हों या बुरे, जो चुनौती है, उसे बहरहाल स्वीकार करने पर जोर दिया। उसकी पहली जिम्मेदारी उसके अपने कारोबार के प्रति है, पर इसके साथ-ही-साथ उसका एक व्यापक कर्तव्य सुख-समृद्धि के सर्जक, एवं मुक्त-व्यापार की अर्थ-व्यवस्था की सरपरस्ती करने का भी है, जो हमारे स्वतंत्र समाज का आधार है।

ये उत्तरदायित्व कैसे पूरे किये जा सकते हैं, अपने कर्तव्य को सफलता से एवं विशेष दूरदर्शिता से पूरा करने के लिए वह क्या कर सकता है, इन्हीं दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर समस्या के खास पहलुओं पर विचार किया गया।

व्यापार-क्षेत्र को बढ़ाने के लिए जो अधिक-से-अधिक ज़ोर दिया जा रहा है, उसे देखते हुए व्यापारी-वर्ग के लिए किन-किन मूलभूत आवश्यकताओं और मापदंडों की जरूरत है, ताकि वह अपना विज्ञापन-क्षेत्र बढ़ा सके, यह बात खास तौर से विदेशी मंडियों के दृष्टिकोण से कही गई थी और इसपर बड़ी उपयोगी चर्चा हुई। बहस का खास मुद्दा यही था कि सफल व्यापार के लिए व्यापारी मंडियों का क्या महत्व है और आर्थिक कल्याण को कैसे बढ़ाया जा सकता है।

स्थिरता और मुद्रा के मुक्त विनिमय में व्यापारी-वर्ग के अलावा अन्य कोई भी वर्ग अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। भले ही आंशिक रूप से हो, पर मुद्रा की स्थिति कमजोर या मजबूत कर

देना भी उसकी एक बड़ी जिम्मेदारी है। जाने या अनजाने, व्यापार को चलाने के तरीकों के कारण या अपनी सरकार पर डाले हुए दबाव के कारण वह मुद्रास्फीति को पैदा कर देता है, जो कभी-कभी कुछ समय के लिए उसके हक में लाभदायक होती है।

कांग्रेस के सामने यही प्रश्न था कि कस प्रकार उन उद्देश्यों तथा लक्ष्यों तक पहुंचा जाय, जिन्हें सभी देशों के लोग और सरकारें अपनाना चाहती हैं, ताकि तेजी से आर्थिक विकास हो, जीवन-स्तर ऊंचा हो और काफी हद तक बेरोजगारी का उन्मूलन किया जा सके। साथ-ही-साथ चालू कीमतें और चालू मुद्रा का चलन भी स्थिर रहे, जिसके बिना ऐसा विकास या प्रगति कालांतर में मृगमरीचिका सिद्ध होती है। यही एक समस्या है, जो किसी-न-किसी रूप में सब देशों के सामने है और विकासोन्मुख देशों के लिए खास करके यही बहुत पेचीदा सवाल है।

'मंडल' का संस्मरण साहित्य

१ अमिट रेखाएं
(संपादिका : सत्यवती मल्लिक) ३.५०
जीवन के हृदयस्पर्शी रेखाचित्रों का संग्रह

२ कोई शिकायत नहीं
कृष्णा हठीसिंग २.५०
नेहरू-परिवार की हृदयस्पर्शी व सजीव झांकियां

३ मानवता के झरने
(ग० वा० मावलंकर) १.५०
बंदियों के जीवन की कुछ मार्मिक यथार्थ घटनाएं

४ काश्मीर पर हमला
(कृष्णा मेहता) २.००
एक रोमांचकारी आपबीती कहानी

५ मैं भूल नहीं सकता
(कैलासनाथ काटजू) २.५०
हृदयस्पर्शी, रोचक तथा शिक्षाप्रद संस्मरण

६ मील के पत्थर
(रामवृक्ष बेनीपुरी) २.००
गांधीजी, राजेन्द्र बाबू, विनोबा, प्रेमचन्द आदि के संस्मरण

७ मैं इनका ऋणी हूं
(इन्द्र विद्यावाचस्पति) २.००
राष्ट्रीय नेताओं, विद्वानों तथा समाज सेवियों के रोचक और मार्मिक संस्मरण

८ मेरे संस्मरण
(ग० वा० मावलंकर) २.००
गांधीजी के संपर्क के संस्मरण

९ विनोबा के साथ सात दिन
(श्रीमन्नारायण) ०.७५
विभिन्न महत्वपूर्ण समस्याओं पर गंभीर विचार

१० मेरी जीवन-यात्रा
(जानकीदेवी बजाज) २.००
जीवन-निर्माण की सरल, सुबोध एवं भावपूर्ण कहानी

११ एक आदर्श महिला
(विनायक तिवारी) १.००
स्व० अवंतिकाबाई गोखले के सेवामय जीवन की कहानी

१२ लोकमान्य तिलक
(पांडुरंग गणेश देशपांडे) २.५०
स्वराज्य के मूल-मंत्रदाता की प्रेरणादायक जीवनी

१३ एक क्रांतिकारी के संस्मरण
(बनारसीदास चतुर्वेदी) १.००
प्रिंस क्रोपाट्किन का रेखाचित्र और संस्मरण

१४ स्मरणांजलि
(संपादक—काका कालेलकर) १.५०
गुरुजनों, मित्रों, संबंधियों तथा प्रशंसकों द्वारा स्व० जमनालाल बजाज के संस्मरण